अमर क्रांतिवीर
चंद्रशेखर आजाद
"अगर अब भी तुम्हारा खून न खौला तो वह खून नहीं, पानी है।"

अमर क्रांतिवीर

चंद्रशेखर आजाद

भारत भूषण
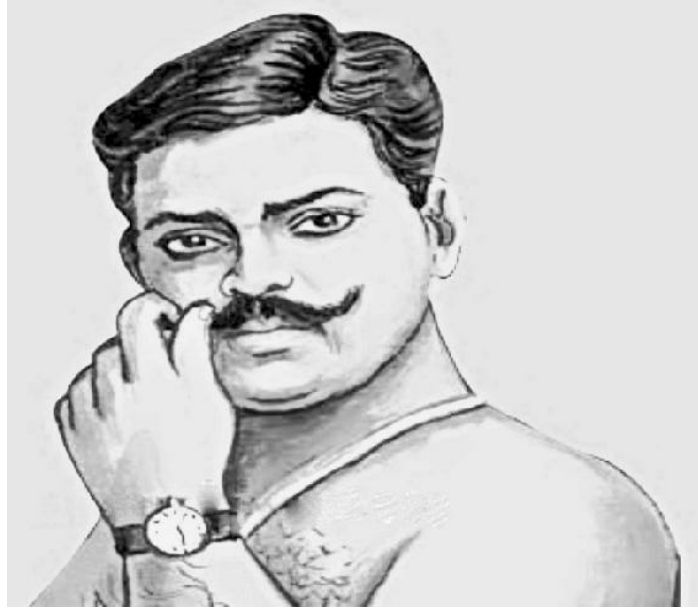
शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।

अपनी बात

भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में चंद्रशेखर आजाद का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। उनका मूल नाम चंद्रशेखर तिवारी था। भले ही लोग स्वतंत्रता-संग्राम में उनके योगदान को पूर्ण रूप से न जानते हों, लेकिन इतना अवश्य जानते हैं कि वे इस संग्राम के अग्रगण्य क्रांतिकारियों में शामिल थे और उनके नाम से बड़े-बड़े अंग्रेज पुलिस अधिकारी तक काँप उठते थे। बाल्यावस्था में पुलिस की बर्बरता के खिलाफ उन्होंने विरोध प्रकट किया और एक अंग्रेज अफसर के सिर पर एक पत्थर जड़ दिया। अदालत में उन्होंने घोषणा की कि उनका नाम 'आजाद' है। उन्हें पंद्रह कोड़ों की सजा मिली, जिसे उन्होंने हँसते-हँसते सहा। तभी उन्होंने संकल्प किया कि वे पुलिस के हाथ नहीं लगेंगे, हमेशा आजाद रहेंगे। जब कभी परिस्थितियाँ विपरीत होंगी तो वे स्वयं अपना अंत कर लेंगे। आखिर में वही हुआ। इलाहाबाद में एक विश्वासघाती के कारण पुलिस से घिर जाने पर उन्होंने अपनी पिस्तौल से स्वयं अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली।

अपने क्रांतिकारी जीवन में आजाद ने कदम-कदम पर अंग्रेजों को कड़ी टक्कर दी। उन्होंने अपना जीवन देश पर बलिदान कर दिया। उन्होंने सुखी जीवन का त्याग करके कँटीला रास्ता चुना। भले ही वे अपने जीवन में आजादी का सूर्योदय न देख पाए हों, लेकिन गुलामी की काली घटा को अपने क्रांति-तीरों से इतना छलनी कर गए थे कि उस काली घटा को हिंदुस्तानी जमीन पर से आखिरकार दुम दबाकर भागना पड़ा।

प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं क्रांतिवीर को सादर समर्पित है।

-महेश शर्मा

1

बाल्यकाल

यह अंग्रेजी सल्तनत का काल था। संपूर्ण भारत परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा कराह रहा था। हर भारतीय की बस एक ही ख्वाहिश थी-आजादी। उस समय मध्य प्रदेश में एक छोटी सी रियासत थी अली राजपुर। उसी अली राजपुर रियासत के अंतर्गत एक गाँव था भँवरा, जहाँ पर पं. सीताराम तिवारी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती जगरानी देवी रहा करतेथे।

पं. सीताराम तिवारी गाँव के सम्मानित एवं ईमानदार व्यक्तियों में गिने जाते थे। ईमानदार व्यक्ति के पास अकसर धन की कमी रहती है और पं. सीताराम तिवारी भी इसके अपवाद नहीं थे। धन की समस्या उनके सामने अकसर खड़ी रहती थी। कहा जाता है कि गरीबी में इनसान को अपना स्वाभिमान बनाए रखना कठिन होता है। सच तो यह है कि ईमानदारी का वास्तविक महत्त्व भी तभी है, जब आदमी अपना स्वाभिमान कायम रख सके। यूँ गरीबी को ईमानदारी और स्वाभिमान की एक कसौटी माना जा सकता है, जो व्यक्ति की सच्चाई, स्वाभिमान और ईमानदारी को परखती है; परंतु जो लोग सच्चे व स्वाभिमानी होते हैं, छोटी-मोटी समस्या उसका बाल भी बाँका नहीं कर पाती। पं. सीताराम तिवारी ऐसे ही स्वाभिमानी व्यक्तियों में शामिल थे, जिनके सामने कठिनाइयों का पहाड़ चूर-चूर हो जाता है।

पं. सीताराम तिवारी को दुख अपनी गरीबी का नहीं था, उनका दुख यह था कि वे अभी तक मात्र एक पुत्र के पिता थे, उनकी एक पुत्र की इच्छा और थी। यूँ तो उनके तीन पुत्र हुए थे, परंतु तीनों जन्म लेने के बाद उन्हें छोड़कर इस दुनिया से चले गए थे। इस समय उनकी पत्नी पुन: गर्भवती थीं। एक तरफ जहाँ उनके मन में यह आशा थी कि शायद इस बार यह शिशु उन्हें छोड़कर नहीं जाएगा, तो दूसरी तरफ एक अनजाने भय से उनका हृदय काँपता रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि इस बार भी उन पर दुखों का पहाड़ टूट पड़े। उन्हें अकसर यह लगता था कि अगर इस बार भी ऐसा हुआ तो वे उस दुख को शायद ही बरदाश्त कर पाएँ।

यही सब सोचते हुए वे दरवाजे पर बैठे हुए थे कि तभी एक साधु ने आवाज दी, "माँ, भिक्षा दो।"

साधु को देखकर वे उठे और उनसे आग्रह करते हुए बोले, "महाराज, आसन ग्रहण करें।"

साधु बैठ गए। जगरानी देवी ने आदर से भिक्षा लाकर उनकी झोली में डाल दी।

"क्या बात है पंडितजी, आप कुछ परेशान हैं?" साधु ने भिक्षा अपनी झोली में समेटते हुए कहा।

"नहीं महाराज, बस वैसे ही जीवन की गति के विषय में सोच रहा था।" सीतारामजी की आवाज से उदासी स्पष्ट झलक रही थी।"

"अरे, घर में तो खुशी की बात है और आप इस तरह उदास हो रहे हैं। आखिर बात क्या है?"

"वही तो सोच रहा हूँ, महाराज।" और पंडितजी ने अपने मन की सारी बात साधु को बता दी।

साधु महाराज थोड़ी देर तक चुप रहे और फिर बोले, "इस बार ऐसा कुछ नहीं होगा। आप निश्चिंत रहें, भगवान् शिव की उपासना करें, इस बार आपका बालक आपको नहीं सताएगा। बालक आपके नाम को युग-युगों तक के

लिए अमर कर जाएगा।"
"सच, महाराज?" पंडितजी का चेहरा खिल उठा।
"हाँ, पंडितजी, इस बार आपका पुण्य ही आपके पुत्र के रूप में जन्म लेने वाला है।" यह कहकर साधु महाराज चले गए।

23 जुलाई, 1906 का दिन था। इस दिन पंडितजी के घर एक सुंदर बालक ने जन्म लिया। बालक थोड़ा कमजोर दिखता था, परंतु उसके मुखमंडल पर एक अपूर्व तेज विद्यमान था। जब उनकी पत्नी ने उसे उनके हाथों में दिया तो वे उस बालक को देखते ही रह गए। उसके मुख पर ऐसा तेज था कि आँखें ही नहीं ठहरती थीं। "
"हमारा पुत्र भगवान् शिव का वरदान है। हम इसका नाम चंद्रशेखर रखेंगे।" उन्होंने प्रसन्नता में भरकर अपनी पत्नी से कहा।

जगरानी देवी ने थोड़ा मुसकराकर अपनी सहमति दे दी।

बच्चे के छठ-पूजन के दिन सारे गाँव को न्योता दिया गया। सारे गाँव की स्त्रियाँ आईं। जो भी उस बालक को देखता, बस देखता ही रह जाता। गाँव की सभी स्त्रियों ने बार-बार जगरानी देवी से कहा कि देखना, इस बालक को काला टीका लगाकर रखना, कहीं किसी की नजर न लग जाए।

चंद्रशेखर बड़े होने लगे। जब वे अपने पाँव पर चलने लगे तो माँ जगरानी देवी उन्हें नहला-धुलाकर काला टीका लगा देती थीं। ऐसे में उनके पुत्र की शोभा और भी बढ़ जाती थी।

बालक चंद्रशेखर का पालन-पोषण पंडितजी बड़े मन से कर रहे थे। इस पालन-पोषण के मध्य उनकी गरीबी कभी आड़े नहीं आई। पंडितजी यथासंभव चंद्रशेखर की हर इच्छा को पूरा करने का प्रयास करते थे।

कालचक्र मंथर गति से अपना सफर तय करता रहा और काल के इस सफर के साथ चंद्रशेखर भी बढ़ते रहे। वे अपने माँ-बाप के लाड़ले थे तो अपनी मित्र-मंडली के एक निर्भीक एवं खुशमिजाज बच्चे, हम उम्र बच्चों के नेता।

चंद्रशेखर में आदर, वीरता एवं निर्भीकता के गुण मौजूद थे। बचपन से ही उनकी बातें सुनकर तथा उनके निर्भीक व्यक्तित्व को देखकर लोगों को आश्चर्य होता था।

एक बार की बात है, दीवाली का दिन था। चारों तरफ दीये जल चुके थे। उस समय उनकी उम्र लगभग आठ-नौ साल की रही होगी। वे भी अपने साथियों के साथ पटाखे चलाने में व्यस्त थे। उनके आस-पास छोटे-छोटे बच्चे खड़े उन्हें फुलझड़ियाँ जलाते देख रहे थे।

चंद्रशेखर ने उन बच्चों को प्रसन्न करने के लिए आठ-दस फुलझड़ियाँ एक साथ जलाकर अपने हाथों में ले लीं। इससे खूब उजाला हुआ। साथी बच्चे ताली मारकर हँस रहे थे तथा खुश हो रहे थे।

तभी असावधानीवश चंद्रशेखर की हथेली जल गई। यह देखकर सभी सकते में आ गए। बच्चे घबराकर शोर मचाने लगे। उनके साथियों ने उनकी हथेली को देखकर कहा, "चंद्रशेखर, तुम्हारा हाथ तो बहुत बुरी तरह जल गया है।" उन्हीं में से कुछ बच्चे उनके माता-पिता को खबर देने उनके घर की ओर भी दौड़ पड़े।

परंतु आठ-नौ साल के चंद्रशेखर तो मानो किसी बुजुर्ग की भाँति अपनी जलन एवं पीड़ा को दबाए खड़े-खड़े मुसकरा रहे थे। उन्होंने इधर-उधर भाग रहे अपने मित्रों को बुलाया और उनसे कहा, "भाई, तुम लोग इस तरह इतना परेशान क्यों हो? यह कोई बड़ी चोट नहीं है। ठीक हो जाएगी। वैसे भी इस शरीर को तो कभी-न-कभी मिटना ही है, फिर इससे इतना मोह ठीक नहीं है।"

उनके चार भाइयों में सुखदेव ही जीवित थे। उनसे उनका संबंध बहुत स्नेहिल था। वे कभी-कभी खेल-खेल में ही कहते, "भैया, दुखों से घबराना ठीक नहीं। दुखों से लड़ने में जीवन का वास्तविक अर्थ है।"

बचपन में वीरता भरे खेल चंद्रशेखर को काफी पसंद थे। मल्लखंभ, लाठी चलाना, कुश्ती जैसे खेलों में चंद्रशेखर की रुचि बहुत थी। हालाँकि उस समय उनकी आयु इन सब खेलों में पारंगत होने की नहीं थी, परंतु कहा जाता है कि जैसा मनुष्य का विचार होता है, उसकी क्रीड़ा भी वैसी ही होती है, यह बात चंद्रशेखर पर सौ प्रतिशत खरी उतरती थी। बचपन से ही वीरता का गुण उनके स्वभाव में शामिल था। वे न तो किसी से भयभीत होते थे और न ही किसी गलत बात को बरदाश्त करते थे।

उनके बचपन की एक और घटना है। गाँव के कुछ बच्चों में शर्त लगी कि भुतहा पोखर पर जाकर कौन सही-सलामत लौट सकता है? उन्होंने बड़ी निर्भीकता से हामी भर ली। दिन में तो बच्चों ने शर्त लगा ली, परंतु जब रात होने लगी और कुहरा छाने लगा तो सभी सोचने लगे कि इस प्रकार उन्हें अकेले कैसे जाने दिया जाए। सभी बच्चों ने कहा, "चंद्रशेखर, छोड़ो, बेकार में परेशान होने से क्या फायदा। हम अपनी शर्त वापस लेते हैं।"

परंतु चंद्रशेखर नहीं माने। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि "जो बात तय हो गई, वह तय हो गई। बात से मुकरना अच्छी बात नहीं है।" अंतत: वे उस तालाब तक जाकर वापस लौटे।

चंद्रशेखर का बचपन उनके आगेवाले दिनों का संकेत था। अपने बचपन में ही उन्होंने यह जता दिया था कि वे किसी भी कीमत पर न तो अपना वचन तोड़ सकते हैं और न ही हार मान सकते हैं।

❑

2

विद्यार्थी जीवन

वक़्त धीरे-धीरे अपना सफर तय कर रहा था। बालक चंद्रशेखर अब पाँच वर्ष के हो गए थे। उस समय गाँवों में बालकों को पाठशाला भेजने के लिए सर्वाधिक उचित उम्र पाँच साल ही मानी जाती थी। जब बालक को पाठशाला जाना होता था, तब उसकी शुभ तिथि निकाली जाती थी और तब जाकर बालक पाठशाला जाता था।

बालक चंद्रशेखर को भी पाँच साल की उम्र पूरी होने के बाद तिथि देखकर गाँव की पाठशाला में भेज दिया गया। उनके बड़े भाई सुखदेव उस समय उसी पाठशाला में पढ़ते थे। दोनों भाई साथ-साथ पाठशाला जाते थे।

चंद्रशेखर पढ़ने में अच्छे थे। उनकी त्वरित बुद्धि का लोहा उनके अध्यापक भी मानते थे। वे न तो पढ़ने से जी चुराते थे और न ही बहाने बनाते। उनके अध्यापकों ने उनके पिता सीताराम तिवारी से कहा कि "पंडितजी, आपका यह बालक न सिर्फ पढ़ने में तेज है बल्कि लगनशील भी है। आप इसकी शिक्षा पर ध्यान दीजिए। निश्चय ही यह आपके परिवार का नाम रोशन करेगा।"

पिता के लिए सबसे बड़ा सुख होता है पुत्र की प्रशंसा सुनना। पं. सीतारामजी को अपने पुत्र की प्रशंसा सुनकर अत्यंत खुशी हुई। उन्होंने अपने सामर्थ्यानुसार अपने पुत्र की शिक्षा पर खर्च करने का निश्चय किया। उन्होंने मनोहर लाल त्रिवेदीजी, जो उस समय गाँव में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, को चंद्रशेखर को घर पर पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया। चंद्रशेखर की न्याय के प्रति लालसा जितनी तीव्र थी, उनके विचार उस समय से ही उतने उच्च एवं न्यायप्रिय। वे कोई गलत बात बरदाश्त नहीं करते थे। यहाँ तक कि खेल में भी वे यह ध्यान रखते थे कि कहीं उनसे कोई गलत काम न हो जाए।

उनके बचपन की एक घटना से उनकी न्याय-बुद्धि का प्रमाण मिलता है।

एक बार त्रिवेदीजी दोनों भाइयों को पढ़ा रहे थे। वे चंद्रशेखर की न्याय-बुद्धि से परिचित तो थे ही, उनके मन में आया कि तनिक देखा जाए, ये मेरी गलती पर क्या करते हैं। अत: उन्होंने जान-बूझकर एक ऐसा शब्द, जो चंद्रशेखर को भली-भाँति ज्ञात था, गलत बोल दिया।

त्रिवेदीजी उन्हें पढ़ाते समय पास में एक डंडा रखते थे। चंद्रशेखर ने वह डंडा उठाया और त्रिवेदीजी को दो डंडे जमा दिए। पूरे घर में हंगामा मच गया। तिवारीजी बाहर से दौड़े हुए आए और चाहा कि उसी बेंत से वे चंद्रशेखर को उनकी अशिष्टता की सजा दें; परंतु त्रिवेदीजी ने उन्हें रोक दिया और बड़े प्यार से चंद्रशेखर से पूछा, "बेटा, तुमने ऐसा क्यों किया? क्या तुम नहीं जानते कि बड़ों से, खासकर अपने पिता तथा गुरु से, इस प्रकार का व्यवहार कितनी बड़ी अशिष्टता है?"

चंद्रशेखर ने बड़ी मासूमियत परंतु पूर्ण निर्भीकता के साथ कहा, "गुरुजी, मैंने अनजाने में या अपनी अशिष्टता के कारण आपको नहीं मारा है, बल्कि आप हमारी गलती पर हमें मारते हैं, इसलिए मैंने आपकी गलती पर आपको मारा है। न्याय तो सबके लिए एक समान होना चाहिए न।"

त्रिवेदीजी ने बालक चंद्रशेखर को गले से लगा लिया। उन्होंने सीतारामजी से कहा, "भाई साहब, आपका यह पुत्र

कोई साधारण व्यक्ति नहीं होगा। यह तो युगस्रष्टा बनेगा। काल भी इसे याद रखेगा।"

चंद्रशेखर की उम्र अब लगभग चौदह वर्ष की हो गई थी। उन्होंने गाँव में अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली थी। पं. सीताराम तिवारी का खयाल था कि इतनी शिक्षा बहुत है। अब वे सामान्य रूप से पढ़-लिख तो गए ही थे, अब उन्हें पढ़ने की क्या जरूरत है। यूँ भी चंद्रशेखर उनकी छोटी संतान थे। एक तरह से वे माता-पिता की आँखों के तारे थे, अत: माता-पिता उन्हें अपने से दूर भी नहीं करना चाहते थे।

परंतु चंद्रशेखर में शिक्षा के प्रति ललक थी। वे और पढ़ना चाहते थे। उस समय देश में काशी उच्च शिक्षा का एकमात्र केंद्र था। उनकी इच्छा थी कि वे काशी जाकर पढ़ें। एक दिन उन्होंने अपने पिता सीतारामजी से इस संबंध में चर्चा करते हुए कहा, "पिताजी, मैं काशी जाकर पढ़ना चाहता हूँ। कृपया आप मुझे काशी भेज दें।"

सीतारामजी ने थोड़ा हँसते हुए कहा, "अरे, तुझे क्या करना है इतना पढ़कर? हमें तुमसे नौकरी-चाकरी तो करवानी नहीं है। वैसे भी, मैं तो तुम्हारे बिना रह भी लूँगा, लेकिन तुम्हारी माँ नहीं रह पाएगी। अगर मैंने तुम्हें काशी भेज दिया तो वह निश्चय ही रोज मुझे कोसती रहेगी। अत: तुम अपनी माँ से ही पूछ लो।"

चंद्रशेखर ने यह बात जब अपनी माँ से कही तो उन्होंने उन्हें अपनी गोद में भर लिया और स्नेह एवं प्रेम से विह्वल होकर बोलीं, "बेटा, यहाँ तो मैं एक पल भी तुझसे अलग नहीं रह पाती हूँ, अगर तू काशी चला गया तो फिर तो मैं मर ही जाऊँगी। पुत्र, ऐसा मत सोच। तू हमें छोड़कर चला गया तो हम क्या जी पाएँगे?"

माता-पिता के अपरिमित स्नेह के कारण चंद्रशेखर को काशी जाने की आज्ञा नहीं मिल पाई। वे लोग एक पल के लिए भी उन्हें अपने से दूर नहीं करना चाहते थे। आज तब उन्होंने चंद्रशेखर की शायद ही किसी इच्छा को मानने से इनकार किया था; परंतु अपने लाडले की यह बात मानना उनके लिए संभव नहीं था।

परंतु कहा गया है कि तीर चलानेवाले हाथों को चूड़ियाँ कब भाती हैं। जिन्हें प्रकृति मानवीय इतिहास की शृंखला में एक नई रचना के लिए जन्म देती है, भला मोह या किसी प्रेम की जंजीर उसके कदमों को बाँध पाती है।

चंद्रशेखर तो मानवीय इतिहास की लंबी शृंखला के उस कतिपय महिमावान् पुरुष-श्रेष्ठों में हैं, जिनकी याद आने पर आज भी मन में वीरता और देशभक्ति का प्रकाश कौंध पड़ता है।

गाँव में चंद्रशेखर का मन नहीं लग रहा था। वे अपनी धुन के पक्के तथा अपने इरादों से कभी न डिगनेवाले व्यक्तियों में से थे। एक बार उन्होंने अपने मन में कोई बात ठान ली तो बस ठान ली। जब तक उनका वह इरादा पूरा नहीं हो जाता था, वे शांत होकर नहीं बैठ पाते थे।

वे काशी जाने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे और माता-पिता की अनुमति अभी मिली नहीं थी। वे जानते थे कि लाख प्रयास करने पर भी उन्हें अनुमति नहीं मिल सकती थी। अंतत: एक दिन बिना किसी को बताए वे घर से निकल पड़े। अब काशी जाकर वहाँ से शिक्षा प्राप्त करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था।

जीवन का यह सच हमें कहाँ ले जा रहा है, कौन जाने? हम इस पथ पर निकलते तो कहीं और के सफर पर हैं, परंतु काल की गति हमें खींचकर किसी और मंजिल की तरफ लेकर चली जाती है। बालक चंद्रशेखर का चौदह वर्ष में घर छोड़ना वैसे कोई बहुत महत्त्वपूर्ण घटना नहीं थी। बहुत से लोग इस उम्र में घर छोड़कर कहीं काम करने, पढ़ने या किसी और कारण से निकल पड़ते हैं। परंतु चंद्रशेखर का घर से निकलना भारतीय इतिहास की वह स्वर्णिम गाथा लिखने की पृष्ठभूमि थी, जिस पर आज भी हर भारतीय ही नहीं, अपने देश तथा अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए संघर्ष कर रहा कोई भी नौजवान, कोई भी जागरूक कौम गर्व कर सकती है।

घर से एक बार जो चंद्रशेखर निकले तो फिर निकल ही गए। वैसे तो चंद्रशेखर अपनी जन्मभूमि के दर्शन करने तथा माता-पिता से मिलने कई बार घर आए, परंतु जिसे वास्तविक अर्थों में घर-वापसी कहते हैं, वैसा कभी नहीं

हुआ। उन्होंने घर छोड़ा और फिर मातृभूमि के हो गए। एक छोटे से घर को छोड़कर उन्होंने सारे देश को ही अपना घर बना लिया।

शात्र कहते हैं कि मुक्ति के लिए मोह, माया, ममता जैसे सांसारिक बंधनों का परित्याग करना पड़ता है। संसार का यही वास्तविक अर्थ भी है। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि वास्तविक संन्यासी वह नहीं है जिसने घर, मोह, ममता आदि त्यागने के साथ अपने कर्मों का परित्याग भी कर दिया है। वास्तविक रूप में संन्यासी तो वह है, जो इन भौतिक आकांक्षाओं और आसक्तियों का परित्याग करके अपने सामाजिक कर्म के बंधन का निर्वाह करता है। ऐसा संन्यासी कभी भी इस कर्म के बहाव में पड़कर उसके फल के प्रति आसक्ति का प्रदर्शन नहीं करता अपितु निष्काम भाव से (कामना-रहित होकर) मात्र अपना कर्म करता है।

अगर शात्रों के इन शब्दों के प्रकाश में देखें तो हम पाएँगे कि चंद्रशेखर ने वास्तविक अर्थों में अपना घर छोड़कर एक समय संन्यास की ओर अपना कदम बढ़ाया। माँ का वात्सल्य और पिता का स्नेह भी उस कर्मवीर युवा संन्यासी को बाँध नहीं सका। अपने आगामी जीवन में प्राप्त होनेवाले भौतिक सुखों की आकांक्षा भी उस दिव्य पुरुष को क्षण भर के लिए विचलित नहीं कर पाई और वे इन सारे सुखों का बलिदान कर आखिर एक दिन काशी पहुँच ही गए।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा---

आदरणीय पिताजी,

चरण स्पर्श!

मैंने आप लोगों की अवमानना की है। मैं जानता हूँ कि यह मुझसे अक्षम्य अपराध हुआ है; परंतु माता-पिता के स्नेह और आप लोगों की मात्र उदारता को ध्यान में रखते हुए मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि आप लोग मेरे इस अपराध को बहुत सरलता से क्षमा कर देंगे। अगर मेरा उद्‌देश्य माँ सरस्वती की चरण-वंदना न होता तो निश्चय ही आप मुझसे इस प्रकार की अपनी अवज्ञा नहीं पाते। बचपन में सैकड़ों बार कभी जिद करके, कभी रूठकर तो कभी निवेदन करके मैं अपनी बातें मनवा लेता था। अत: यह बताते हुए भी कि मेरा यह अपराध क्षमा योग्य नहीं है, आपसे क्षमा की चाह रखता हूँ। आप लोग मेरी किसी भी प्रकार से चिंता मत कीजिएगा। मैं यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आया हूँ। वैसे भी, काशी भगवान् शिव की नगरी है और अब मैंने स्वयं को भगवान् शिव के चरणों में समर्पित कर दिया है। अत: अब वही मेरे रक्षक हैं। इसलिए अब आपको मेरे लिए विशेष चिंता नहीं करनी चाहिए। बस आपके और माँ के आशीष की आवश्यकता है। जल्दी ही आपके चरणों का दर्शन कर मैं कृतार्थ होऊँगा।

आपका पुत्र

चंद्रशेखर

पत्र पढ़कर सीतारामजी तथा उनकी पत्नी की आँखों में आँसू भर आए। वे चंद्रशेखर को अपने से दूर नहीं करना चाहते थे, लेकिन अब क्या हो सकता था। वैसे उन्हें इस बात का संतोष था कि चंद्रशेखर कोई साधारण कार्य करने नहीं, बल्कि काशी में शिक्षा ग्रहण करने गए हैं। ऐसे कितने बालक हैं, जिनमें इतनी हिम्मत है, जो इस प्रकार का कदम उठा सकते हों। यही सब सोचकर उनका सिर स्वाभिमान से ऊपर उठ गया।

काशी अनादि काल से ही एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थली रही है। धर्म काशी का प्राण है और शिक्षा काशी का श्वास। एक ओर तो काशी भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थलियों में से एक है। ऐसा माना जाता है कि इस नगरी को भगवान् आशुतोष ने अपने त्रिशूल की नोक पर बसाया है, अत: यह संपूर्ण संसार से अलग है। तो दूसरी ओर काशी में शुरू से ही शिक्षा-प्राप्ति के लिए संसार भर के विद्वान् आते रहे हैं। काशी भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण

विश्व के लिए शिक्षा का एक प्रकाश-स्भं है।

काशी में रहनेवाले धर्मप्राण धनी लोग सर्वदा से ही काशी में शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आनेवाले गरीब विद्यार्थियों की मदद करते रहे हैं। इसके लिए वे एक व्यवस्था बनाकर गरीब विद्यार्थियों के रहने-खाने आदि का मुफ्त प्रबंध करने के अतिरिक्त उनके वस्त्रादि के व्यक्तिगत खर्च के लिए कुछ रुपए दे दिया करते थे। चंद्रशेखर का प्रबंध भी यहीं से हो गया। काशी में अपने निवास आदि का प्रबंध हो जाने के बाद वे निश्चिंत होकर विद्याध्ययन के कार्य में संलग्न हो गए।

❑

3

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति

जिस समय चंद्रशेखर ने काशी में पदार्पण किया, उस समय के राजनीतिक काल को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का महत्त्वपूर्ण काल कहा जा सकता है। उस समय स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए संघर्ष पूर्णत: शुरू हो चुका था। भारतीय नौजवानों का रक्त अब गुलामी की जंजीरों को उखाड़ फेंकने के लिए मचल रहा था। कितने ही आजादी के दीवाने अपने सिर पर कफन बाँधकर इस महासंग्राम में कूद पड़े थे।

उन्हीं दिनों भारतीय राजनीति में एक और महानतम आत्मा का प्रवेश हुआ, वे थे महात्मा गांधी। दक्षिण अफ्रीका की प्रयोगशाला में अपने अहिंसा नामक अस्त्र का पूर्ण सफल परीक्षण करने के बाद वे भारत लौटे थे। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई तेज कर दी। देश भर में आजादी की माँग के लिए तीव्र स्वर उठने लगे। जगह-जगह पर लोगों ने सत्य और अहिंसा के नारे लगाने शुरू कर दिए।

ब्रिटिश सरकार के लिए यह परेशानी की स्थिति थी। एक ओर तो विश्व समुदाय के समक्ष वे अपनी मानवीय सूरत को बदलना नहीं चाहते थे और दूसरी ओर भारत को आजाद करने के लिए भी तैयार नहीं थे।

वे भारतीय जनक्रांति का संपूर्ण दमन चाहते थे, परंतु कुछ इस प्रकार कि सारा संसार उनके इस दमन को भी आपसी व्यवस्था ही समझे और विश्व समुदाय के समक्ष उन्हें उत्तरदायी न होना पड़े।

काफी मंत्रणा के बाद सरकार ने एक समिति के गठन का निश्चय किया। सरकार ने इस समिति के गठन के पक्ष में यह तर्क दिया कि वह भारतीय राजनीतिक एवं कानूनी व्यवस्था में क्रम सुधार करना चाहती थी। परंतु अप्रत्यक्ष रूप से इस समिति के दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला, भारत भर में क्रांतिकारी गतिविधियों के विषय में संपूर्ण जानकारी प्राप्त करना तथा दूसरा उन्हें दबाने के लिए प्रभावी कानून तैयार करना।

सरकार द्वारा दिसंबर 1917 में गठित इस समिति में बंबई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बेसिल स्कॉट, यू.पी. रेवेन्यू बोर्ड के सदस्य बर्तेलाइट, कलकत्ता उच्च न्यायालय के अधिवक्ता प्रभातचंद्र मिश्र, मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश कुमार स्वामी शात्री और न्यायमूर्ति ए.एस.टी. रोलेट आदि सम्मिलित थे। समिति की अध्यक्षता जस्टिस रोलेट कर रहे थे, इसलिए इस समिति का नाम रोलेट समिति था।

गठन के कुछ समय बाद इस समिति ने 226 पृष्ठों में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इसी रिपोर्ट को भारतीय इतिहास में 'रोलेट एक्ट' के नाम से जाना जाता है।

इस समिति ने अपनी जो रिपोर्ट प्रस्तुत की, उसके आधार पर भारतीयों की स्वतंत्रता तथा मूल अधिकारों को और भी कम कर दिया गया था। समिति की इस रिपोर्ट के आधार पर सरकार को अपना दमन-चक्र चलाने का एक बहाना मिल गया। अब सरकार ने इस रिपोर्ट को आधार बनाकर न सिर्फ क्रांतिकारी आंदोलनों वरन् राजनीतिक आंदोलनों को भी दबाना शुरू कर दिया। इसके अंतर्गत राजनीतिक आंदोलनों को राजद्रोह की संज्ञा देकर उन्हें दबाया जा सकता था।

मुख्य रूप से इस समिति की रिपोर्ट ही पुलिस के विचारों के आधार पर तैयार की गई थी। इस रिपोर्ट में गरम दल

के कांग्रेसियों-लोकमान्य तिलक तथा विपिनचंद्र पाल आदि जैसे विशुद्ध राजनीतिक व्यक्तियों को भी चाफेकर बंधुओं तथा खुदीराम बोस जैसे क्रांतिकारियों के समान बताया गया था।

अब रोलेट कमेटी की सिफारिशों के आधार पर पुलिस को जैसे तानाशाही का अधिकार प्राप्त हो गया था। वह जब चाहे, जिसे चाहे, नजरबंद कर सकती थी, गिरफ्तार कर सकती थी, तलाशी ले सकती थी अथवा जमानत माँग सकती थी।

इसमें कई सिफारिशें ऐसी थीं, जिनके आधार पर गिरफ्तार किए गए अभियुक्त को बिना किसी संतोषजनक या पर्याप्त सबूत के भी शीघ्रातिशीघ्र दंडित किया जा सकता था। इस प्रकार की सिफारिशों से न्यायालय भी प्रभावित होते थे।

रोलेट बिल या रोलेट एक्ट के नाम से जानी जानेवाली ये सभी सिफारिशें सरकार ने बिना किसी संशोधन के स्वीकार कर लीं।

रोलेट एक्ट सन् 1919 की शुरुआत में पास कर दिया गया था। इस रिपोर्ट का प्रकाशित होना था कि संपूर्ण देश में आक्रोश एवं असंतोष की लहर दौड़ गई। कांग्रेस ने इसे भारतीय जनता के मौलिक अधिकारों का हनन बताया तथा देशवासियों से इस काले कानून का विरोध करने की अपील की।

महात्मा गांधी ने इस बिल के विरोध में सत्याग्रह करने की चेतावनी दी। उन्होंने कहा, "यह कानून भारतीय जनता के मौलिक अधिकारों का हनन ही नहीं, बल्कि मानवीय व्यवस्था के नाम पर एक कलंक है। अगर सरकार अविलंब इस कानून को वापस नहीं लेती तो मुझे सत्याग्रह के लिए बाध्य होना पड़ेगा।" उन्होंने देश भर में 30 मार्च, 1919 को एक देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया।

30 मार्च के दिन दिल्ली में एक सफल हड़ताल हुई। प्रसिद्ध आर्य-समाजी स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में एक बहुत बड़े जुलूस का आयोजन हुआ। पुलिस की लाठी एवं गोली की चेतावनी के बावजूद इस जुलूस में हजारों लोगों ने भाग लिया। पुलिस की तमाम धमकियों के बावजूद यह जुलूस कहीं भी नहीं रुका और आगे बढ़ता गया।

दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने पुलिस ने जुलूस में शांतिप्रिय ढंग से भाग ले रही निहत्थी भीड़ पर गोलियाँ चला दीं। इस गोलीबारी में पाँच लोगों की मौत हो गई और कई व्यक्ति बुरी तरह जख्मी एवं घायल हो गए।

यह आंदोलन हिंदू-मुसलिम एकता की एक अभूतपूर्व मिसाल बना। 9अप्रैल, 1919 को स्वामी श्रद्धानंद ने दिल्ली की शाही जामा मसजिद में वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हुए भाषण दिया।

दासता की जंजीरों को काटने के लिए हिंदू और मुसलमानों ने सबकुछ भुला दिया था। उनका दीन, धर्म तथा ईमान सबकुछ राष्ट्र बन गया। कंधे-से-कंधा मिलाकर हिंदू व मुसलमान दोनों वर्गों ने सरकार के इस बिल का जबरदस्त विरोध किया।

इस बिल के विरोध की जगह मात्र दिल्ली ही नहीं थी। सारा देश इस कानून का विरोध कर रहा था। सन् 1919 में ही अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। डॉ. किचलू तथा सत्यपाल इस अधिवेशन को सफल बनाने की तैयारियों में लगे हुए थे कि अचानक सरकार ने उन दोनों नेताओं को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया।

इस घटना से जनता में आक्रोश फैल गया। अमृतसर की जनता सड़कों पर उतर आई और कांग्रेसी नेताओं के न चाहते हुए भी हिंसा शुरू हो गई। इस हिंसा का परिणाम यह हुआ कि अमृतसर के इस हिंसक आंदोलन में पाँच अंग्रेज मार दिए गए तथा कई मकानों में आग लगा दी गई। अमृतसर से फैलती हुई यह आग गुजराँवाला तथा कसूर तक पहुँच गई। वहाँ भी कई हिंसक घटनाएँ हुईं।

अपनी गिरफ्तारी से पहले डॉ. सत्यपाल ने गांधीजी को पंजाब आने के लिए एक पत्र लिखा था। 18 अप्रैल को जब गांधीजी पंजाब जाने के लिए रवाना हुए तो उन्हें रास्ते में ही पलवल स्टेशन के पास गिरफ्तार कर बंबई जेल भेज दिया गया।

सरकार ने हालाँकि गांधीजी को इसलिए गिरफ्तार किया था कि उनके पंजाब जाने से वहाँ के आंदोलन में और भी उग्रता आ सकती थी; परंतु सरकार की यह सोच पूरी तरह गलत थी। गांधीजी अगर पंजाब पहुँच जाते तो वहाँ के हिंसक आंदोलन को शांतिप्रिय ढंग से पूरा करने की सलाह देते। गांधीजी को हिंसा से कभी प्रेम नहीं था; परंतु उस समय ब्रिटिश सरकार इस बात को समझने के लिए कतई तैयार नहीं थी।

गांधीजी की गिरफ्तारी का समाचार जैसे ही पंजाब पहुँचा, वहाँ की जनता की भावनाएँ और भी उग्र हो गईं। वहाँ जगह-जगह पर जुलूस निकाले जाने लगे, लोगों ने काले झंडे लेकर प्रदर्शन किया। सड़कें प्रदर्शनकारियों से पूरी तरह से भर गईं। जुलूस निकाले जा रहे थे, हड़तालें हो रही थीं। जगह-जगह पर 'रोलेट एक्ट हाय-हाय' के नारे लग रहे थे और जॉर्ज पंचम के पुतले फूँके जा रहे थे।

जनता के साथ-साथ पुलिस भी अब उतनी ही उग्र हो गई थी। वह जब और जहाँ चाहती, लाठी चार्ज कर देती थी। प्रदर्शनकारियों को खुलेआम पीट देना तथा जरा सा भी संदेह होते ही बेंत लगाना आम बात हो गई थी। कई लोगों पर पुलिस ने गोलीबारी तक की। पुलिस रोज सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार करके जेल में ठूँसती। सारी जेलें ठसाठस भर गई थीं, परंतु गिरफ्तारियाँ अभी भी जारी थीं।

ब्रिटिश सरकार के लाख प्रयास के बावजूद गिरफ्तारियाँ रुक नहीं रही थीं। सरकार ने प्रदर्शनकारियों तथा हड़तालों को समाप्त करने के लिए सभी संभव कोशिशें कीं, परंतु नतीजा शून्य ही निकला। लोग जाति-धर्म आदि की संकीर्ण विचारधाराओं से बाहर आकर अब देश के लिए एकजुट हो गए थे। पंजाब ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारत हर समय बस देश की आजादी के रंग में रँगा नजर आ रहा था।

13 अप्रैल, 1919 को वैसाखी का दिन था। यह पर्व पंजाब की खुशी और प्रगति का सबसे पावन पर्व माना जाता है। इसी दिन रोलेट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सभा आयोजित की गई थी। इस सभा में लगभग 20,000 लोग उपस्थित थे, जिसमें बच्चे, बूढ़े, युवा सभी उम्र के स्त्री-पुरुष शामिल थे।

जलियाँवाला बाग चारों तरफ से चारदीवारी से घिरा हुआ था। उस चारदीवारी में आगे जाने का मात्र एक ही मार्ग था, जो काफी सँकरा था। इससे होकर वाहन तो क्या, दो-चार लोग भी एक साथ बाहर नहीं निकल सकते थे।

यह सभा पूर्णत: शांतिपूर्वक संपन्न हो रही थी। एक स्थानीय नेता जनता को संबोधित कर रहे थे कि अचानक वहाँ जनरल डायर आ धमका। उसके साथ 150 के आसपास सैनिक थे, जिनमें लगभग 50 गोरे तथा 100 भारतीय थे।

डायर ने सैनिकों को बाग में एक ओर खड़ा कर दिया तथा बिना कोई चेतावनी दिए उन्हें उस निहत्थी व बेकसूर जनता पर गोली चलाने का आदेश दे दिया।

गोलियाँ चलते ही जनता में भगदड़ मच गई। बाहर निकलने का रास्ता इतना सँकरा था कि उस आपाधापी में किसी का भी उस रास्ते से बच निकलना मुश्किल था। कई लोग तो भागते हुए उस रास्ते पर ही गोली के शिकार हो गए और वह रास्ता भी बंद हो गया।

काफी देर तक गोलियाँ चलती रहीं और जनरल डायर मासूम व निरीह जनता के साथ खून की होली खेलता रहा। हिंसा का जो नंगा नाच वहाँ हुआ, उसने शताब्दियों में पैदा हुए कितने ही नर-पिशाचों के खूनी कारनामों को पीछे छोड़ दिया। उस बाग में एक जगह कुआँ था, कई लोग अपनी जान बचाने के लिए उस कुएँ में ही कूद पड़े।

परंतु उनमें से भी बहुत कम लोग जीवित बच पाए।

इस गोली-कांड से सारा विश्व कराह उठा। जलियाँवाला बाग के इस गोली-कांड में कुल 1,600 गोलियाँ चली थीं। दूसरे दिन प्रकाशित हुई सरकारी रिपोर्ट में सरकार द्वारा बताया गया कि इस गोली-कांड में 400 लोग मारे गए तथा लगभग 2,000 लोग घायल हुए। लेकिन यह अंग्रेजी सरकार के आँकड़ों की जानकारी मात्र थी। सरकार ने सही रिपोर्ट नहीं दी थी। बाद में इसकी जाँच के लिए कांग्रेस ने एक आयोग गठित किया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार जलियाँवाला बाग गोली-कांड में मरने तथा घायल होनेवालों की संख्या ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत संख्या से लगभग दोगुनी अधिक थी।

बाद में सरकार ने इस घटना की न्यायिक जाँच के लिए 'हंटर कमीशन' नियुक्त किया। हंटर कमीशन के सामने अपने बयान में जनरल डायर ने कहा कि उसने गोली चलाने से पहले जनता को तितर-बितर होने का आदेश दे दिया था। उसके आदेश के बावजूद जब जनता ने उठने से इनकार कर दिया तो उसे विवश होकर गोलियाँ चलवानी पड़ीं।

परंतु जनरल डायर का यह बयान सिर्फ झूठ के सिवा कुछ नहीं था। सच तो यह था कि उसने जनता से ऐसी कोई अपील की ही नहीं थी और अगर वह ऐसा कोई आदेश जारी भी करता तो आनन-फानन में उतनी बड़ी भीड़ का उस सँकरे रास्ते से होकर बाहर निकल पाना कतई संभव नहीं था। दूसरी बात यह है कि उस समय ऐसी परिस्थिति अचानक नहीं बन गई थी कि जरा सी बात पर हजारों लोगों को भून दिया जाए।

सच तो यह था कि यह ब्रिटिश सरकार की सोची-समझी चाल थी। सरकार ने इस तरह पंजाब में बढ़ते विद्रोह को कुचल डालने का प्रयास किया। सरकार की सोच यह थी कि इस गोली-कांड से जहाँ आम जनता में दहशत फैलेगी वहीं सारे देश का ध्यान रोलेट एक्ट के विरोध से हटकर इस गोली-कांड की ओर मुड़ जाएगा।

इस भयानक कांड के बाद भी सरकार की क्रूरता में कोई कमी नहीं आई और दमन-चक्र पूर्ववत् चलता रहा। राह चलते लोगों को बेंतों से पीटा जाता और उन्हें छाती के बल पर रेंगकर चलने के लिए मजबूर किया जाता था। सैकड़ों लोगों को गिरफ्तार करके जेलों में भर दिया गया। इस गोली-कांड के बाद अमृतसर शहर के लिए बिजली-पानी की आपूर्ति पूरी तरह से बंद कर दी गई और वस्तुओं के मूल्य सैनिकों की इच्छा के अनुसार तय किए जाने लगे। बहुत से स्थानों पर यह नियम बनाया गया कि हरेक भारतीय प्रत्येक गोरे व्यक्ति को सलाम करेगा। बच्चों से पढ़ाई के बीच-बीच में दिन में तीन-चार बार ब्रिटिश झंडे को सलामी दिलवाई जाती तथा उनसे यह प्रतिज्ञा करवाई जाती कि वे भविष्य में सरकार के प्रति कोई अपराध नहीं करेंगे।

जिन लोगों को बंदी बनाया गया था, जेल में उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। लोगों को सलाखों के पीछे इस प्रकार रखा जाता था मानो वे भेड़-बकरियाँ हों। उनके लिए न तो शुद्ध पानी मुहैया कराया जाता, न ही नित्यकर्म करने की कोई उचित व्यवस्था की जाती थी।

हिंदू-मुसलिम एकता का मखौल उड़ाने के लिए एक हिंदू तथा एक मुसलमान को एक साथ बाँधकर सड़क पर दौड़ाया जाता था। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार अमानवीय क्रूरता की सारे हदें पार कर गई थी।

पंजाब की इन घटनाओं की जानकारी पूरे देश को थी। लोग अपने-अपने ढंग से इन ज्यादतियों का विरोध कर रहे थे। कलकत्ता में रवींद्रनाथ टैगोर ने जलियाँवाला बाग हत्याकांड के विरोध-स्वरूप सरकार द्वारा प्रदत्त अपनी 'सर' की उपाधि वापस कर दी थी। पूरे भारतवर्ष में भयंकर क्षोभ और असंतुष्टि का वातावरण था। लोग ब्रिटिश सरकार का घोर विरोध कर रहे थे। सिर्फ भारतीय ही क्यों, मानवतावाद के समर्थकों ने भी ब्रिटिश सरकार के उन कुकृत्यों का विरोध किया। बनारस में अध्ययनरत चंद्रशेखर भी इन घटनाओं से अनजान नहीं थे। भारतीयों पर हो रहे

इन भयंकर अत्याचारों को सुनकर उनके हृदय में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक ज्वाला धधकने लगी थी।

जब वे अखबारों तथा पत्रिकाओं में ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों की कहानियाँ पढ़ते तो उनका खून खौल उठता। वे देशवासियों पर हो रहे अत्याचार का प्रतिशोध लेना चाहते थे।

उस समय चंद्रशेखर की आयु चौदह वर्ष की थी। यह आयु हालाँकि बहुत तर्क-वितर्क करने की नहीं होती, यह तो मस्ती तथा अध्ययन की आयु होती है; परंतु चंद्रशेखर तो शायद किसी और ही मिट्टी के बने थे। उनका मन खेलकूद के बजाय राष्ट्रवादी गतिविधियों को जानने-समझने में ज्यादा लगता था। अकसर वे अपनी आयु के संगी-साथियों से कहते, "आज हमारा देश गुलाम है। ऐसे में अगर हम अपना समय खेल-कूदकर गँवाते हैं और राष्ट्र की सेवा की तरफ से मुँह मोड़ते हैं तो हमारे इस जीवन का कोई अर्थ नहीं है।" वे अपने साथी नवयुवकों के साथ राष्ट्रवादी समस्याओं पर बातचीत करते। परंतु किशोरवय चंद्रशेखर को राष्ट्र-सेवा का कोई स्पष्ट मार्ग नहीं दिखाई देता था। एक अनजानी सी छटपटाहट उनके अंदर सदैव कुलबुलाती रहती; परंतु वे उस छटपटाहट को कोई सार्थक आयाम देने के लिए कोई सुनिश्चित मार्ग नहीं तलाश पा रहे थे।

❑

4

हवालात में एक रात

सन् 1921 में राष्ट्रीय चेतना पूरा जोर पकड़ने लगी। ब्रिटिश शासन के विरोध में संपूर्ण देश में मानो एक चेतना की लहर दौड़ने लगी। लोग जाति, धर्म के भेदभाव भूलकर विदेशी शासन का तख्ता पलटने के लिए एकजुट हो गए। कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा अरुणाचल से सौराष्ट्र तक पूरा देश एक साथ विदेशी शासन के विरुद्ध कटिबद्ध हो गया। गाँव-गाँव, नगर-नगर और स्थान-स्थान पर स्वदेशी आंदोलन भड़क उठा।

लोगों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। दुकान-दुकान पर धरने-प्रदर्शन किए जाने लगे। हर तरफ विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जाने लगी।

माताओं एवं बहनों तक ने अपनी कीमती साड़ियाँ तथा परिधान अपने हाथों से जला डाले। यहाँ तक कि सुहाग की साड़ी भी अगर विदेशी थी तो भारतीय नारियों ने उन्हें अपने घर से निकाल फेंका। सभी के मन में बस एक ही लालसा थी---आजादी। चाहे जैसे भी मिले, अब इस क्रूर विदेशी शासन से आजादी ही भारतीय जनता का एकमात्र अभीष्ट था।

ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता की इस जागरूकता से काँप गई; क्योंकि अगर भारतीय जनता ब्रिटिश शासन द्वारा बनाए गए सामानों का उपयोग नहीं करेगी तो उनकी अर्थव्यवस्था ही टूटने लगेगी। यहाँ तक कि विदेशी सामानों के इस बहिष्कार से ब्रिटेन में शेयर बाजार में गिरावट आने लगी तथा ब्रिटेन इस आंदोलन को जल्दी समाप्त करने के लिए भारतीय ब्रिटिश सरकार पर निरंतर दबाव बढ़ाने लगा।

ब्रिटिश सरकार इस क्रांति का यथाशीघ्र दमन करना चाहती थी, परंतु कोई उपाय कारगर सिद्ध नहीं हो पा रहा था। तरह-तरह के जुल्म किए गए। क्रांतिकारियों पर तरह-तरह की बंदिशें लगाने की कोशिशें की जाने लगीं, जिसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण भारत में आंदोलनों की बाढ़-सी आ गई। शासन ने भारतीय आंदोलनकारियों पर जगह-जगह लाठी-चार्ज करवाया। कितने ही राष्ट्रवादी नेताओं को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। सभी आंदोलनों एवं सभा-सम्मेलनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परंतु इसका कोई सार्थक परिणाम सामने नहीं आया, बल्कि इसके उलट सरकार के कुकृत्यों का और भी घोर विरोध होने लगा। जनता ने हड़तालें शुरू कर दीं। प्रतिबंध के बावजूद रोज जुलूस निकलने लगे, धरने दिए जाने लगे। सारा देश एक साथ अपने सीने पर लाठी खाने के लिए अन्यायी और जुल्मी शासन के सामने सीना तानकर खड़ा हो गया।

क्रांति की चिंगारी अब ज्वाला बनकर सारे देश में फैल गई थी। देश में हर तरफ से स्वराज की माँग उठने लगी थी। अब इस क्रांति में कोई भी पीछे नहीं था। क्या विद्यार्थी, क्या वकील, क्या मजदूर, किसान तथा सरकारी कर्मचारी-सभी एकजुट होकर विदेशी शासन के विरुद्ध लोहा लेने के लिए तैयार हो गए थे।

भारत माता के लाल अब जाग रहे थे। राष्ट्रीयता का सुनहरा रंग चारों तरफ फैलने लगा था। यहाँ तक कि अब विदेशी शिक्षा को भी लोगों ने अस्वीकार करना शुरू कर दिया था। कई स्थानों पर राष्ट्रीय स्कूल, कॉलेज खोले जा रहे थे, ताकि स्वदेशी शिक्षा-प्रणाली से लोगों के अंदर राष्ट्रीय भावना का विकास हो सके और अधिक-से-अधिक

लोग इस राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दे सकें।

चंद्रशेखर इस परिवर्तन को बड़े ध्यान से देख रहे थे। अब उनकी आयु लगभग पंद्रह-सोलह वर्ष की हो चुकी थी। वे नित्यप्रति व्यायाम करते, जिससे उनके शरीर का विकास भी खूब हुआ था। वे देखने में भोले-भाले, परंतु एक तेजस्वी किशोर लगते थे।

अब उनका हृदय भी इस राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने के लिए मचलने लगा था। स्वतंत्रता की पुकार उन्हें इस राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित कर रही थी। अपने हृदय की इस सनसनी से उनके अंदर उत्साह बढ़ता जा रहा था। अपने आसपास के वातावरण से अब वे ढेर सारी बातें ग्रहण करने लगे थे।

सत्याग्रहियों के साथ जाना, उनसे मिलना, उनसे बातें करना चंद्रशेखर को अच्छा लगता। जहाँ भी जुलूस, हड़तालें होतीं, चंद्रशेखर वहाँ पहुँच जाते। वे सत्याग्रहियों के क्रियाकलापों को बड़े ध्यान से देखते। उनके साथ वे भी नारे लगाते और उनका उत्साहवर्द्धन करते।

क्रांतिकारियों के साथ रहते-रहते उनके अंदर एक प्रकार की निर्भीकता पैदा होने लगी। वे समझ गए कि अन्याय का समर्थन करना अन्याय करने जितना ही बड़ा पाप है। अत: अब वे किसी भी अन्यायपूर्ण कार्य का प्रतिरोध करने से पीछे नहीं हटते थे।

एक दिन वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में धरना चल रहा था कि अचानक पुलिस आ गई। पुलिसकर्मी धरना देनेवाले सत्याग्रहियों को डंडों से पीट रहे थे तथा उन्हें पकड़-पकड़कर बड़ी निर्ममता से सड़क पर घसीट रहे थे। उन्हें कड़ी यातनाएँ दी जा रही थीं। चंद्रशेखर अपनी आँखों के सामने इस प्रकार का अन्याय होते नहीं देख सकते थे। उनका युवा खून खौल उठा। उन्होंने देखा कि एक पुलिस अधिकारी सभी पुलिसवालों को नियंत्रित कर रहा था। चंद्रशेखर ने क्रोध में भरकर एक पत्थर उठाया और खींचकर उसके माथे पर दे मारा। वह पत्थर उस पुलिस अधिकारी को लहूलुहान कर गया। उसके माथे से बड़ी तेजी से खून बहने लगा। बहते खून से उसकी वरदी तर हो गई।

यह उस समय एक बहुत बड़ी घटना थी। दिन-दहाड़े इस तरह किसी पुलिस अधिकारी को पत्थर मारकर घायल कर देना कोई साधारण बात नहीं थी। पुलिसकर्मियों में खलबली मच गई। सत्याग्रहियों को छोड़कर अब पुलिस पत्थर मारनेवाले को खोजने लगी।

चंद्रशेखर इस बीच सबकी आँखों में धूल झोंककर निकल भागने में सफल हो गए थे। फिर भी, एक पुलिसकर्मी ने उन्हें पहचान लिया था। चंद्रशेखर माथे पर चंदन का टीका लगाया करते थे। इस घटना के समय भी उनके माथे पर वही टीका लगा हुआ था। सिपाही को विश्वास था कि वह उस टीका लगानेवाले को देखकर अवश्य पहचान लेगा। पुलिस का एक दल सारे नगर में उस टीकाधारी बालक की तलाश करने लगा और अंतत: वे चंद्रशेखर के ठिकाने पर भी पहुँच गए।

चंद्रशेखर का कमरा कई क्रांतिकारियों के चित्रों से सजा हुआ था। उसकी दीवारों पर महात्मा गांधी, बाल गंगाधार तिलक, पं. मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय आदि कई महानायकों की तसवीरें लगी थीं। चित्रों पर फूल-मालाएँ चढ़ी हुई थीं। सिपाही ने कमरे को ध्यान से देखा। अचानक उसकी दृष्टि चंद्रशेखर के तिलक पर गई। वह समझ गया कि यह वही लड़का है। कमरे में व्याप्त राष्ट्रीयता के वातावरण ने उसके संदेह को और भी पुष्ट कर दिया। उसने आगे बढ़कर चंद्रशेखर के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दीं।

हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जाने के बाद भी उस किशोर सिंह के भावों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यहाँ तक कि उसके माथे पर जरा सी भी शिकन न आई। उसका मन जरा भी विचलित नहीं हुआ। वे समझ गए कि मातृभूमि की सेवा का पहला द्वार जेलखाना ही है। अत: उन्होंने बिना किसी प्रतिवाद के हथकड़ियाँ पहन लीं।

उन्हें थाने लाया गया। पुलिस अधिकारी ने समझा कि यह जरा सा लड़का उत्तेजना में आकर ऐसा कांड कर बैठा है, अत: थोड़ी सी सजा मिलते ही इसकी बुद्धि ठिकाने आ जाएगी। अत: उसने उन्हें हवालात में बंद कर दिया और खुद सोने चला गया।

जाड़े के दिन थे। कड़कड़ाती सर्दी पड़ रही थी, मानो रक्त जम जाएगा। ऐसे में चंद्रशेखर के पास मात्र एक लँगोट तथा एक कुरते के अलावा कुछ नहीं था, न कुछ ओढ़ने के लिए और न कुछ बिछाने के लिए। पुलिस अधिकारी की समझ में यही उसकी सजा थी। उसने सोचा कि जब रात को ठंड लगेगी तो उसके होश अपने आप ठिकाने आ जाएँगे और क्षमा माँगने लगेगा।

परंतु पुलिस अधिकारी यह नहीं समझ पाया कि जिनके दिलों में मातृभूमि के चिराग जलते हैं, वे जरा सी ठंडक क्या, बड़े-से-बड़ा जुल्म भी हँसकर सहन कर लेते हैं-और फिर यहाँ तो मातृभूमि की आजादी का शोला दहक रहा था।

आधी रात के लगभग थानेदार की नींद टूटी। तापमान लगातार कम होता जा रहा था। थानेदार ने सोचा कि इतने कम तापमान में तो वह लड़का बेचारा ठिठुर गया होगा। चलकर उसे देखना चाहिए। उसने आकर सीखचों के पार देखा तो उसके होश उड़ गए। चंद्रशेखर मात्र एक लँगोट पहने दंड-बैठक कर रहे थे। इतनी सर्दी में भी उनके सारे शरीर से पसीना चू रहा था। इतनी कम उम्र में इतनी हिम्मत और दिलेरी देखकर उसे बहुत आश्चर्य हो रहा था। वह थोड़ी देर तक देखता रहा और फिर बिना कुछ कहे चुपचाप जाकर बिस्तर पर लेट गया।

❑

5

आजाद है मेरा नाम

क्रांति के उस जमाने में अगर ब्रिटिश सरकार के लिए कोई सबसे बड़ा सहायक था तो वे थे भारतीय नौकरशाह। एक बार शायद किसी ब्रिटिश नौकरशाह को किसी भारतीय क्रांतिकारी से तो सहानुभूति हो सकती थी, परंतु भारतीय नौकरशाहों से, चाहे वे न्यायपालिका में हों अथवा कार्यपालिका में, किसी को भी सहानुभूति की उम्मीद नहीं होती थी।

काशी में उन दिनों एक नया मजिस्ट्रेट आया था। वह पारसी था। उसका नाम था खेरफाट। अपनी कठोरता तथा तंगदिली के लिए वह पहले ही बड़ा कुख्यात हो चुका था। क्रांतिकारियों के प्रति तो उसका व्यवहार आवश्यकता से बहुत ज्यादा कठोर था। क्रांतिकारियों को वह साधारण से अपराध के लिए भी अत्यंत कठोर दंड दिया करता था। चंद्रशेखर को भी दूसरे दिन उसी की अदालत में ले जाया गया।

खेरफाट की अदालत लगी हुई थी। कठघरे में एक सुंदर तथा गठीले बदन का नौजवान खड़ा था। उस लड़के को देखकर उस निर्दयी व कठोर न्यायाधीश को भी दया-सी आने लगी। उसने एक नजर कठघरे में खड़े नौजवान पर डाली और फिर साधारण भाव में पूछा, "लड़के, तुम्हारा नाम क्या है?"

"आजाद!" उस लड़के ने अत्यंत ही गंभीर आवाज में उत्तर दिया।

"पिता का नाम?"

"स्वतंत्रता।"

मजिस्ट्रेट अपने सवालों का जवाब इस तरह ललकारते स्वर में सुनकर हतप्रभ रह गया। उसने फिर पूछा, "तुम्हारा घर कहाँ है?"

"जेलखाना!" उसी गंभीर आवाज में उत्तर मिला।

ये उत्तर सुनकर मजिस्ट्रेट का चेहरा लाल हो गया। क्रोध के मारे मानो उसके शरीर में आग-सी लग गई। उसने चंद्रशेखर को 15 बेंतों की सजा सुनाई।

सजा सुनकर लोग सन्न रह गए। एक बार तो ऐसा लगा मानो सबको साँप सूँघ गया हो। अपराध के मुकाबले यह दंड बहुत ज्यादा था। उस समय बेंतों का यह दंड बहुत भयानक होता था और 15 बेतों की सजा तो उस कोमल शरीर की सारी खाल उधेड़ देने के लिए काफी थी।

जल्लाद के हाथों से तेल का भीगा हुआ बेंत जब शरीर पर चोट करता तो मानो चमड़ी बेंत के साथ ही लिपटकर चली आती। अच्छे-अच्छे धैर्यशीलों की हिम्मत बेंतों की इस सजा के सामने टूट जाती। बेंत की चोट जब चमड़ी को छीलती तो बड़े हिम्मती भी रोने-चीखने लगते।

ऊपर से तुर्रा यह कि उन दिनों बनारस की जेल का जेलर गंडा सिंह था। कठोरता और निर्दयता में उसका मुकाबला आदिम युग के किसी शैतान से कम नहीं था। बड़े-बड़े कैदी जब गंडा सिंह की जेल में जाने की बात सुनते तो उनकी हिम्मत जवाब दे जाती।

चंद्रशेखर को भी जेलर गंडा सिंह के सामने पेश किया गया। खाली लँगोट छोड़कर बाकी के सभी कपड़े चंद्रशेखर के शरीर से उतरवा लिये गए। उन्हें नंगे शरीर पर बेंत लगाने के लिए तैयार किया गया।

उस समय शरीर पर बेंत लगाने से पहले शरीर पर एक प्रकार की दवाई लगाई जाती थी। चंद्रशेखर के शरीर पर भी उस दवा का लेप लगाया गया। उसके बाद उन्हें एक खंभे से बाँध दिया गया।

चंद्रशेखर के मन से डर जैसे भाव निकल चुके थे। सच तो यह है कि वह कर्मयोगी शरीर की सीमा से बाहर निकलकर आत्मस्थ हो चुका था। राष्ट्रभक्ति अब मात्र उनके विचारों में नहीं बल्कि आत्मा को भी स्पर्श कर चुकी थी। उनकी भाव-भंगिमा से उनकी वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाना कठिन था। जेलर गंडा सिंह का खयाल था कि अभी दो बेंत पड़ते ही इस लड़के की सारी अकल ठिकाने आ जाएगी और यह रो-रोकर रहम की भीख माँगने लगेगा।

जेलर गंडा सिंह ने जल्लाद को बुलाकर उसे बेंत लगाने का आदेश दिया। साथ ही खुद भी खड़े होकर गिनती शुरू की, "एक!"

जल्लाद ने तेल से भीगा बेंत चंद्रशेखर की पीठ पर दे मारा-'सटाक'! और पहले बेंत के साथ ही पीठ की चमड़ी का मांस बेंत के साथ खिंच आया। सबको उम्मीद थी कि अब इस नौजवान के मुँह से आह निकलेगी; परंतु यह देखकर वह जल्लाद जेलर भी आश्चर्य से भर उठा, जब भारत माता के उस वीर सपूत के मुँह से आह अथवा चीख निकलने के बजाय निकला---"भारत माता की जय!"

जेलर की आवाज में उसका सारा आक्रोश सिमट आया। उसने क्रोध भरी नजरों से उस जल्लाद की ओर देखा कि शायद उसने बेंत जोर से नहीं लगाई। वह कड़ककर बोला, "दो!"

जल्लाद ने अपनी पूरी ताकत लगाकर बेंत लहराया। बेंत की आवाज गूँजी-'सड़ाक'। परंतु वह आवाज 'भारत माता की जय' की आवाज में दबकर रह गई।

पीठ की चमड़ी पूरी तरह कटकर लटक गई थी। खून की धार बह रही थी। फिर भी, उस वीर के चेहरे पर न तो पीड़ा का कोई भाव था, न आँखों में दर्द। शैतानों के शैतान गंडा सिंह ने भी यह देखकर दाँतों तले उँगली दबा ली। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि आखिर इस पंद्रह साल के किशोर में वह कौन सी शक्ति थी, जो इस प्रकार उसे पीड़ा से मुक्त किए हुए थी।

अपनी आँखों में आश्चर्य का भाव लिये शैतान चिल्लाया---"तीन!"

जल्लाद ने अपनी पूरी शक्ति से तीसरा बेंत जमाया। फिर भी चंद्रशेखर के मुँह से चीख या बेचारगी की जगह वही सिंहनाद गूँजा---"भारत माता की जय!"

अब उनकी पीठ पर बड़े-बड़े घाव बन चुके थे। घाव से मांस और रक्त बाहर को उमड़ आया था; लेकिन आजादी का मतवाला वह दीवाना अब भी पूर्ण रूप से शांत था। उसके चेहरे पर पीड़ा या दुख का कोई भाव नहीं था।

लोग अपलक दृष्टि से उस अद्‍भुत बालक को देख रहे थे और सोच रहे थे कि आखिर किस माँ की कोख से यह सिंह पैदा हुआ है। 'सड़ाक, सड़ाक' की आवाज गूँज रही थी और साथ ही गूँज रहा था चंद्रशेखर का जयघोष। वे आवाजें दूर फिजाँओं में गूँज रही थीं और चारों तरफ से लौटकर बस एक ही आवाज आती थी---"भारत माता की जय!"

चंद्रशेखर का सारा शरीर खून से तर-बतर हो चुका था। मांस के चीथड़े बाहर निकल आए थे। चमड़ी मानो सूखकर चटक-सी गई थी, परंतु माँ भारती के उस वीर सपूत के चेहरे पर पीड़ा या दुख के भाव की जगह वीरता

का तेज था, जो देखनेवालों की आँखों को चौंधिया देता था।

चारों तरफ बस एक ही आवाज गूँज रही थी-"भारत माता की जय", "इनकलाब जिंदाबाद"। वातावरण इन नारों की गूँज में पूरी तरह डूब गया था। वहाँ हजारों की भीड़ इकट्ठा् हो गई थी, जो माँ भारती के उस सच्चे सपूत को देखने और उसका स्वागत करने के लिए आतुर नजर आ रही थी। सबकी निगाहें खामोशी से उस फाटक के अंदर माँ भारती का जयघोष करते उस नौजवान के बाहर आने के रास्ते पर लगी हुई थीं।

सजा के बाद चंद्रशेखर जब बाहर आए तो सारा वातावरण 'माँ भारती की जय' तथा 'आजाद अमर रहें' के नारों से गूँज उठा। जनता ने उनकी राहों में अपनी पलकें बिछा दीं। 'भारत माता की जय' तथा 'ब्रिटिश राज का नाश हो' के नारे से वातावरण थर्रा उठा।

लोग नारे लगा रहे थे-"नौकरशाही मुर्दाबाद", "अत्याचारियों का नाश हो", "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।"

आजाद पर फूलों की वर्षा हो रही थी। उनका खून से सराबोर शरीर फूलों से लद चुका था। अगर संभव होता तो लोग उनका सारा दर्द अपनी आँखों में छिपा लेते।

बनारस के ज्ञानवापी मुहल्ले में, जिसमें चंद्रशेखर आजाद का निवास था, मानो एक क्रांति की लहर-सी दौड़ गई। सभी ने सलाह करके शाम को एक विशाल सभा का आयोजन किया। सारे नगर से, हर एक छोर से लोगों की भीड़ सभा-स्थल की ओर दौड़ रही थी। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष सभी क्रांति के उस महानायक को एक नजर देखना चाहते थे। सबके दिल में उस अद्भुत नौजवान के प्रति प्रेम का भाव उमड़ रहा था।

शाम तक एक खूबसूरत मंच तैयार हो गया। हजारों की संख्या में लोग वहाँ पहुँचे थे। आजाद ने जब मंच पर आकर लोगों का अभिवादन किया तो लोगों की आँखों में प्रेम, श्रद्धा और करुणा का सागर उमड़ आया। सबने बस यही सोचा कि यह क्रांति का दूत स्वाभाविक रूप से आजाद लगता है। यदि इसने अपना नाम 'आजाद' बताया है तो भला इसमें गलत भी क्या है!

उनके दर्शन होते ही मंच पर चारों तरफ से रंग-बिरंगे फूलों की बारिश होने लगी। पूरा मंच मानो फूलों के भार से चरमरा उठा। वहाँ उपस्थित सभी लोगों में क्रांति की उद्दाम भावना जाग उठी थी। 'भारत माता की जय' और 'आजाद की जय' के नारों से सारी जनसभा गूँज उठी। लोगों ने जब उनके घावों को देखा तो मानो सबके अंदर एक अनजाने क्रोध के भाव ने जन्म ले लिया। जो किसी कारणवश अंग्रेजी शासन के पक्ष में बोलते थे, वे भी ब्रिटिश साम्राज्य की तबाही के नारे लगाने लगे।

सत्य तो यह है कि किसी भी निरंकुश और अत्याचारी शासन की तबाही वास्तव में शासन की वजह से ही होती है। जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ता जाता है, शासन की उम्र घटती जाती है।

संपूर्णानंदजी उन दिनों 'मर्यादा' नामक पत्रिका का संपादन करते थे। उस पत्रिका के प्रकाशक श्री शिवप्रसाद गुप्त थे। अगले दिन संपूर्णानंदजी ने उस पत्रिका में आजाद का चित्र छापा, साथ में ब्रिटिश साम्राज्य की ज्यादतियों को उजागर करता एक लेख भी प्रकाशित किया गया। वह लेख मुख्य रूप से ब्रिटिश नौकरशाही के अत्याचारों का भंडाफोड़ करने के उद्देश्य से दिया गया था, ताकि जो लोग अभी तक स्वतंत्रता के इस महासंग्राम में अपनी भागीदारी नहीं कर पाए थे, वे भी इस लड़ाई में समान रूप से भाग ले सकें और ब्रिटिश शासन का संपूर्ण रूप से विरोध हो सके। इस लेख में आजाद के वीरतापूर्ण कार्य एवं साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी।

हालाँकि मजिस्ट्रेट खेरफाट ने चंद्रशेखर की मातृभूमि के प्रति इस भावना को समाप्त करने के लिए उन्हें बेंतों की सजा दी थी, परंतु उसने फैसले के विपरीत चंद्रशेखर के हृदय में मातृभूमि के प्रति प्रेम और ब्रिटिश शासन के प्रति

घृणा की भावना दोनों को दृढ़ कर दिया।

वास्तव में मनुष्य की मूल प्रवृत्ति ही आजादी है। आजादी लौकिक प्रक्रिया नहीं, प्राकृतिक सत्य है; क्योंकि आत्मा को कभी गुलाम नहीं बनाया जा सकता। शरीर की स्वतंत्रता चाहे कोई भले ही छीन ले, परंतु मन की स्वतंत्रता को किसी भी अत्याचारी शासन द्वारा नहीं छीना जा सकता। व्यक्ति का शरीर चाहे बंदी बना लिया जाए, परंतु मन को बंदी बनाना किसी भी सत्ता के लिए संभव नहीं। स्वतंत्रता के सच्चे प्रेमी मात्र अपने लिए संघर्ष नहीं करते, उनका संघर्ष तो संपूर्ण जीव-जगत् के लिए होता है। उनकी आजादी की परिभाषा मात्र स्वांत:सुखाय नहीं होती, अपितु सर्वजन हिताय होती है और शायद यही कारण है कि प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी अत्याचारी शासन की आँखों की किरकिरी होता है। उसका संपूर्ण जीवन कारागार की अँधेरी कोठरी में बीतता है। परंतु वे आनेवाली नस्लों को एक ऐसा प्रकाश दे जाते हैं, जो युगो-युगों तक मानव जाति के रास्ते में प्रकाश-स्भं बनकर उन्हें राह दिखाता रहता है।

ब्रिटिश शासन के समय सभी स्वतंत्रता-प्रेमियों का वास्तविक घर जेल ही बन गया था। मजिस्ट्रेट को चंद्रशेखर ने अपना घर जेलखाना ही बताया था। इस प्रकार उनके उत्तर में यह गंभीर अर्थ छिपा था कि 'मैं स्वतंत्रता की माँग करनेवाला एक सिपाही हूँ और मेरे जैसे प्रत्येक सिपाही का घर जेलखाने के सिवा और क्या हो सकता है।' उनके इस उत्तर में अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों पर किए जा रहे अत्याचारों का संकेत मिलता था।

इस घटना ने चंद्रशेखर को लोकप्रिय बना दिया था। अब उनका 'पं. चंद्रशेखर तिवारी' नाम नेपथ्य में कहीं खो गया था। सच तो यह है कि यह घटना ही उनके भावी जीवन की आधारशिला थी। इस घटना के बाद वे 'चंद्रशेखर' से 'वीर चंद्रशेखर आजाद' बन गए।

जेल के नियम के अनुसार आजाद को रिहा करते समय तीन आने दिए गए। बेंतों की सजा के बाद जब जेलर गंडा सिंह ने उन्हें वे तीन आने पकड़ाए तो आजाद ने यह कहते हुए वे पैसे उसके मुँह पर दे मारे कि इन पैसों से वह अपने अंग्रेजी आकाओं के लिए दावत का प्रबंध कर ले। इस प्रकार, इतनी पीड़ा के बाद भी आजाद ने साहस का दामन नहीं छोड़ा और एक बार फिर अपने स्वाभिमान एवं साहस का परिचय दिया।

चंद्रशेखर आजाद को मिली इस सजा ने पूरे देश के जनमानस को झकझोर डाला। देश के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों ने इस घटना को विस्तार से प्रकाशित किया और ब्रिटिश सरकार की निंदा की। घटना की सूचना चंद्रशेखर आजाद के घर भी पहुँची। समाचार पढ़कर उनके पिता सीतारामजी को बहुत चिंता हुई। वे तुरंत बनारस पहुँच गए। उन्होंने चंद्रशेखर को बहुत समझाने-बुझाने का प्रयास किया। उन्होंने आजाद से कहा, "बेटा, जो हुआ उसे भूल जा और घर वापस लौट चल। वहाँ तेरी माँ तेरा इंतजार कर रही है।"

आजाद ने पिता से कहा, "पिताजी, घर पर निश्चित रूप से मेरी माँ मेरा इंतजार कर रही है, परंतु यहाँ तो भारत माता हम सबका इंतजार कर रही है। मेरी माँ को अगर कोई कुछ कहे तो मैं उसे शायद गला घोंटकर मार दूँगा और यहाँ देखिए, भारत माता दस्युओं के हाथों में जकड़ी कराह रही है। अब कृपया आप ही बताइए, ऐसे में मेरा वास्तविक कर्तव्य क्या है

"पिताजी, भारत माता की आजादी मेरा एकमात्र मकसद है। क्या आप चाहेंगे कि मैं अपने एकमात्र मकसद का परित्याग कर घर जाकर सुख की नींद सो जाऊँ? क्या मेरा जमीर मुझे निरंतर कोसता नहीं रहेगा?"

"परंतु बेटा..." सीतारामजी कुछ कह नहीं पाए।

"पिताजी, मैं देश-सेवा का व्रत ले चुका हूँ। अब तो जीना भी भारत माता के लिए और मरना भी भारत माता के लिए। इसे मेरा हठ मत समझिए, मेरी विवशता समझिए। अगर मैं भारत माता को परतंत्रता की बेड़ियों से छुड़ा सका

तो निश्चित रूप से आपके पास वापस लौट आऊँगा और अगर कहीं यह न कर सका तो एक दिन इसी भारत माता के आँचल में चुपचाप सो जाऊँगा। अगर आपकी आज्ञा मानकर अपना व्रत मैं तोड़ भी दूँ तो भी मैं आप लोगों की सेवा नहीं कर पाऊँगा, क्योंकि यह व्रत टूटने के बाद मेरे लिए जीना संभव ही नहीं होगा। इसलिए मुझे मातृभूमि की सेवा के लिए आशीर्वाद दीजिए।"

सीतारामजी से कुछ कहते नहीं बना। उन्हें लगा कि इन कुछ ही दिनों में उनका सुपुत्र कहीं खो गया है। अब सामने जो बेटा है, वह चंद्रशेखर उनका पुत्र नहीं है बल्कि 'आजाद' है-मोह-माया से मुक्त, जीवन-बंधन से मुक्त! आजाद, जिसे वे पहचान नहीं पा रहे हैं। उन्होंने चंद्रशेखर को मन-ही-मन आशीर्वाद दिया और कहा, "पुत्र, तू अपने उद्देश्य में सफल हो। मैं जा रहा हूँ और संभवत: आज के बाद तेरे मार्ग में कभी नहीं आऊँगा।" यह कहकर सीतारामजी अपनी आँखें पोंछते चुपचाप वहाँ से चले गए। आजाद खामोशी से पिता को जाते देखते रहे। उनकी पलकों में भी कुछ आँसू उतर आए थे; परंतु उस महावीर ने उन आँसुओं को अंदर-ही-अंदर पी लिया था।

सांसारिक लक्ष्यों से परे रहनेवाले ये महान् योद्धा अपने पिता के अंदर उमड़ रही भीषण पीड़ा का अर्थ जानते थे, परंतु अब वे देश-सेवा का व्रत ले चुके थे। प्रकृति ने उनके लिए उनके लक्ष्य का निर्माण कर दिया था और अब उनके लिए उनका यही लक्ष्य संसार का सबसे बड़ा सुख था।

अब उनकी दृष्टि में उनका कोई एक घर नहीं था, संपूर्ण भारत ही उनका घर था और संपूर्ण भारतवासी बंधु-बांधव। उन्होंने देश-हित के लिए व्यक्तिगत हित का परित्याग कर दिया था। व्यक्तिगत सुख अब सर्वजन सुखाय के रूप में बदल चुका था। पारिवारिक मोह की संकीर्ण विचारधारा से बाहर निकलकर उन्होंने स्वयं को समस्त मानवता के लिए, आजादी तथा एकता के लिए समर्पित कर दिया था।

❑

6

क्रांति : जीवन की नई डगर

चंद्रशेखर के भाग्य का फैसला हो चुका था। क्रांति अब उनके जीवन की नई डगर थी और आजादी उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य। देशभक्ति के रंग में वे पूरी तरह से रँग गए थे और पढ़ाई से उनका मन जैसे उचट-सा गया था। जिंदगी अब उन्हें नीरस तथा बोझिल लगने लगी थी। अब वे विद्यालय में भी क्रांति संबंधी चर्चा ज्यादा करते थे। वे अपने साथ पढ़नेवालों को भी उतना ही इस लड़ाई में भाग लेने के लिए प्रेरित करते थे। उनके मन में अनगिनत उमंगें थीं। वे आजादी के लिए कुछ करना चाहते थे। वे हर पल अब इसी योजना को बनाने में लगे रहते कि आजादी के लिए ज्यादा-से-ज्यादा क्या किया जा सकता था।

उस समय गांधीजी असहयोग आंदोलन चला रहे थे। उनका यह आंदोलन अपने चरम पर था। संपूर्ण देश की जनता मानो अँगड़ाई लेकर किसी स्वप्न से जाग उठी थी। जगह-जगह पर ब्रिटिश शासन एवं उसकी तानाशाही का विरोध हो रहा था। उस समय एक ऐसी घटना घट गई, जिसने गांधीजी को झकझोरकर रख दिया। गोरखपुर में चौराचौरी के पास ग्रामीणों और सिपाहियों में कुछ झड़प हो जाने के बाद ग्रामीणों को सिपाहियों ने बुरी तरह से पीट दिया। इससे उत्तेजित होकर ग्रामीण थाने पर चले आए और पथराव करने लगे। ग्रामीणों को इतना उत्तेजित देख सिपाही भागकर थाने में घुस गए और थाना अंदर से बंद कर लिया। उस समय उन्हें यह चाहिए था कि वे अपने साथी पुलिसकर्मियों को सजा देते और ग्रामीणों से क्षमा माँगते। परंतु ब्रिटिश सल्तनत के वे क्रूर सिपाही मानवतावादी सिद्धांतों से संपूर्ण रूप से परे थे। भला वे इस प्रकार की भलमनसाहत क्यों दिखाते! इसका परिणाम यह हुआ कि क्रोध से उत्तेजित उन ग्रामीणों ने चौराचौरी थाने में आग लगा दी। उस आग में थाने के दरोगा सहित कई सिपाही जलकर भस्म हो गए।

भारतीय इतिहास में इस घटना को 'चौराचौरी कांड' के नाम से जाना जाता है।

आंदोलन के दौरान हुई इस हिंसा ने गांधीजी को झकझोरकर रख दिया। उन्होंने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। इसके ठीक दूसरे ही दिन गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया।

भारतीय जनता का उत्साह उस समय चरम पर था। महात्मा गांधी के इस निर्णय से सबको निराशा हुई। लोग ठिठककर सोचने लगे कि गांधीजी ने यह क्या कर दिया।

हालाँकि बाद का इतिहास यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि हिंसा के बल पर अंग्रेजों से उन परिस्थितियों में मुकाबला नहीं किया जा सकता था और गांधीजी इस बात को भली-भाँति जानते थे। सच तो यह था कि गांधीजी ने प्राचीन भारतीय सिद्धांत को एक कूटनीतिक कैनवास पर चित्रित किया था। परंतु यह भी आश्चर्य की ही बात थी कि आंदोलन वापस लेने के तत्काल बाद गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया था। दरअसल आंदोलन के समय पूरा देश गांधीजी के साथ था। अंग्रेज जानते थे कि इस समय गांधीजी को गिरफ्तार करने का अर्थ है-सारा देश धू-धू कर जल उठेगा और तब वे किसी भी तरह इसको रोक नहीं पाएँगे। परंतु आंदोलन के स्थगित हो जाने के बाद लोगों की उमंगों पर पानी फिर गया और गांधीजी अकेले पड़ गए। तब उन्हें गिरफ्तार करना उतना घातक नहीं रह गया

था।

आंदोलन के बीच में रुक जाने पर सबसे ज्यादा निराशा युवा वर्ग को हुई थी, जो अब आजादी को अपने बिलकुल निकट मानते थे। आजाद को भी इससे गहरा आघात लगा; परंतु यह विचलित होने का समय नहीं था। वे जिस पथ पर चल पड़े थे, उससे वापस लौटने का लेश मात्र खयाल भी उनके मन में नहीं आया।

अब चंद्रशेखर राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। इस तरह से सक्रिय हो जाने के बाद उनकी पढ़ाई में व्यवधान आने लगा। बहुत सोचने-विचारने के बाद उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। अब वे अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उचित वातावरण की खोज करने लगे।

उनका रुझान वीरतापूर्ण कार्य की ओर ज्यादा था। वे सोचते थे कि आजादी माँगने से नहीं मिलती बल्कि इसके लिए उद्योग करना पड़ता है। अब तक क्रांतिकारी युवकों ने अनेक बार अपने साहसपूर्ण कार्यों से ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी थी। बनारस भी क्रांति की चिनगारियों से अछूता नहीं था। इन क्रांतिकारी गतिविधियों में बंगाल के क्रांतिकारियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण थी। बंगाल प्रांत से ही इन क्रांतिकारियों ने देश के कोने-कोने में अपना जाल बिछा रखा था। बनारस षड्यंत्र के नेता और क्रांतिकारियों के नेतृत्वकर्ता शचींद्रनाथ सान्याल के गिरफ्तार होने के बाद उन्हें कालेपानी की सजा दी गई थी। नेतृत्व के अभाव में यह आंदोलन कुछ समय के लिए सुस्त पड़ गया था।

सन् 1922 में सभी राजनीतिक बंदियों को माफ कर दिया गया था। इस प्रकार उस समय ये सभी क्रांतिकारी जेल से छूट गए थे। गांधीजी द्वारा असहयोग आंदोलन वापस लेने के बाद युवा वर्ग उस समय खिन्न था। उसे लग रहा था कि इस प्रकार आजादी कभी प्राप्त नहीं हो पाएगी। शचींद्रनाथ सान्याल ने इस अवसर का लाभ उठाकर पुनः एक क्रांतिकारी दल का गठन कर लिया।

सान्याल ने शीघ्र इस दल को पूर्णत: मजबूत बना लिया। उनकी गतिविधियों का मुख्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश ही था।

उसी समय बंगाल में 'अनुशीलन समिति' नाम की एक क्रांतिकारी संस्था कार्य कर रही थी। शचींद्रनाथ सान्याल का 'क्रांतिकारी दल' तथा 'अनुशीलन समिति' दोनों ही लंबे समय से अलग-अलग कार्य कर रहे थे; परंतु उनकी कार्य-पद्धति एक जैसी थी।

अब इन दोनों क्रांतिकारी संगठनों ने एक साथ मिलकर काम करने का निश्चय किया। इस दल का नाम 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया। संगठित क्रांति द्वारा गणतंत्र की स्थापना करना, नागरिकों को मताधिकार प्राप्त कराना, समाज के शोषित वर्ग का उत्थान करना आदि इस एसोसिएशन के मुख्य उद्देश्य थे।

वास्तव में इस क्रांतिकारी संगठन पर रूसी साम्यवाद का प्रभाव था। इसके सदस्य बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित थे और उसी की तर्ज पर काम करते थे।

अभी कुछ वर्ष पूर्व सन् 1917 में रूस में साम्यवादी शासन की स्थापना हुई थी। इस दल के सदस्य भी उसी प्रकार के शासन के पक्षधर थे।

हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्य पूरे उत्तर प्रदेश में फैल चुके थे। बनारस में राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, शचींद्रनाथ सान्याल तथा रवींद्र मोहन आदि इस दल को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे।

इन्हीं दिनों एक दिन आजाद की मुलाकात दल के प्रमुख संगठनकर्ता प्रणवेशजी से हो गई। प्रणवेशजी आजाद के विचारों तथा उनके कारनामों से बहुत प्रभावित थे। वे यह बखूबी जानते थे कि अगर आजाद जैसा कार्यकर्ता किसी संगठन में शामिल होता है तो निश्चित रूप से वह संगठन के कार्यों में अपना योगदान काफी बेहतर तरीके से दे सकता है। प्रणवेशजी ने आजाद के सामने अपने संगठन में शामिल होने का प्रस्ताव रखा। आजाद को और क्या

चाहिए था। वे तो लंबे समय से इस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे, सो उन्होंने तुरंत उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस तरह आजाद अब हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्य बन गए। सागर की विशाल और चंचल लहर को रास्ता मिल गया था।

संगठन का सदस्य बन जाने के बाद वहीं पर उनकी मुलाकात पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' आदि महान् क्रांतिकारियों से हुई। यहीं से उनके भावी क्रांतिकारी जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ।

❑

7

दो असफल डकैतियाँ

'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का सदस्य बन जाने के बाद आजाद अब पूर्णत: सक्रिय हो गए थे। उनके दल के सभी साथी नवयुवक थे तथा क्रांतिकारी विचारों से ओतप्रोत थे। उनमें वीरता तथा साहस कूट-कूटकर भरा था। वे नवयुवक साधन-विहीन थे, परंतु अपने साहस तथा वीरता के बल पर ब्रिटिश सरकार की सत्ता को चुनौती दे रहे थे। भूखे-प्यासे, संघर्षरत वे नवयुवक मातृभूमि की आजादी के लिए मतवाले थे। अपनी जान की परवाह न करते हुए वे विदेशी शासन को चुनौती दे रहे थे और उसका तख्ता उलट देने के लिए संघर्ष कर रहे थे।

किसी संगठन के निर्माण में सफलता व असफलता कोई मायने नहीं रखतीं और वह भी तब जब उस संगठन का निर्माण किसी निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए न होकर बहुजन हिताय के उद्‌देश्य को ध्यान में रखकर किया गया हो। इन क्रांतिकारियों की सबसे बड़ी उपलब्धि यही थी कि वे मातृभूमि की आजादी के लिए अपने निजी स्वार्थों को, सुखों को, अपने तमाम परिचितों को भूलकर देश-हित में संघर्ष कर रहे थे।

उस समय एसोसिएशन की सदस्य संख्या को ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ाने की जरूरत थी, क्योंकि इससे जहाँ एक ओर इससे एसोसिएशन को मजबूती मिलती, वहीं दूसरी ओर उनके विचारों का प्रसार भी होता। इस कार्य के लिए आजाद को नियुक्त किया गया। आजाद एसोसिएशन के इस कार्य के लिए प्राणपण से जुट गए। वे ब्राह्मण का वेश बनाकर गाँव-गाँव घूमते तथा नवयुवकों से मिलकर उनके विचार जानने का प्रयास भी करते रहते थे। जिन युवकों के विचार उन्हें क्रांतिकारी प्रतीत होते थे, उन्हें वे अपने दल में शामिल कर लेते थे।

इस प्रकार आजाद के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप थोड़े ही समय में संगठन की सदस्यता काफी बढ़ गई। किंतु किसी संगठन को सुचारु रूप से चलाने तथा उसे गति देने के लिए जिस सबसे प्रमुख चीज की जरूरत होती है, वह है धन और संगठन के पास धन का सर्वथा अभाव था।

संगठन के सभी प्रमुख सदस्यों ने मिलकर विचार किया कि इस समस्या के समाधान के लिए एकमात्र उपाय था पूँजीपतियों के घर डाका डाला जाए और अधिक-से-अधिक धन एकत्रित किया जाए।

सबने अपने मत व्यक्त करते हुए कहा कि सभी संसाधनों पर सबसे पहला अधिकार उनका होता है, जो राष्ट्र एवं समाज का विकास चाहते हैं और उस समय तो कुछ ऐसे लोग भी थे, जो भयानक डाकुओं से भी बढ़कर दुर्दांत दस्यु थे, जो समाज के गरीब व निर्बल लोगों को अमानवीय तरीकों से लूटकर अपना घर भरते थे।

संगठन ने इन्हीं से अपनी सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए धन प्राप्त करने का निश्चय किया।

शाम का समय था। दल के कुछ चुने हुए लोग, जिनमें अशफाकउल्ला खाँ आदि शामिल थे, रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में डाका डालने निकल पड़े। फतेहपुर के एक गाँव में डाका डालने का निश्चय किया गया था। जैसे ही वे गाँव में घुसे, गाँव के लोगों ने पूछा, "आप लोग कहाँ से आए हैं और किसके यहाँ जा रहे हैं?"

"गाँव के मुखिया के यहाँ हमारा निमंत्रण है। हम लोग वहीं जा रहे हैं।" तीनों ने उत्तर दिया।

मुखिया अंग्रेजों का पिट्ठ। था। अकसर सरकारी कर्मचारी आदि उसके यहाँ निमंत्रण पर आते ही रहते थे। किसी

को जरा भी संदेह नहीं हुआ और वे बिना रोक-टोक उसके घर पहुँच गए।

थोड़ी ही देर में मुखिया के घर शोर मच गया। तब लोगों को पता चला कि मुखिया के घर डकैती पड़ रही है। देखते-देखते मुखिया के घर के सामने अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई। गाँववालों को देखकर उन्होंने उन्हें डराने के लिए पिस्तौल निकाल ली और धन लूटने में लगे रहे। बिस्मिल ने पहले ही कह दिया था कि औरतों को कोई भी हाथ नहीं लगाएगा, चाहे वे आक्रमण ही क्यों न कर दें। उनका यह दृढ़ विचार था कि जो क्रांतिकारी स्त्रियों का सम्मान नहीं कर सकता, वह क्रांति के पवित्र उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकता।

पुरुषों को तो उन लोगों ने डराकर भगा दिया, परंतु स्त्रियों को कुछ नहीं कहा। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ ही आगे बढ़ आईं और वे लोग चुपचाप रहे। उन्होंने बिस्मिल की नीति का लाभ उठाया। दो स्त्रियाँ आगे बढ़ीं और उन्होंने क्रांतिकारियों के हाथ से पिस्तौल छीन ली। जिन हाथों से ब्रिटिश सरकार का कोई आला पुलिस अधिकारी भी पिस्तौल छीनने से पहले सौ बार सोचता था, उन हाथों से उन औरतों ने बड़ी आसानी से उनकी पिस्तौलें छीन लीं। महिलाओं ने उन्हें लूट से भी रोक दिया।

घर के बाहर भीड़ खड़ी थी और वे नि:शस्त्र हो चुके थे। बिस्मिल समझ गए थे कि परिस्थिति बिगड़ चुकी है। उन्होंने दल के सदस्यों को भागने का इशारा किया। बिना कुछ लिये सभी अपनी जान बचाकर दौड़ पड़े। यहाँ तक कि उनकी पिस्तौलें भी वहीं पड़ी रह गईं।

इस प्रकार, धन की कमी का कोई समाधान नहीं निकल पा रहा था। दल की सभी गतिविधियाँ पूरी तरह बंद थीं। धन का अभाव अब एक बहुत बड़ी समस्या बन चुका था। आजाद इसी चिंता में डूबे थे। वे मन-ही-मन इस समस्या के समाधान के लिए कोई विकल्प तलाशने का प्रयास कर रहे थे। उसी समय एक व्यक्ति उधर से गुजरा। दोनों का परिचय काफी पुराना था। वह आजाद को देखकर बोला, "पंडितजी, इतनी चिंता में क्यों घूम रहे हो? आखिर क्या बात है?"

चंद्रशेखर थोड़े अनमने भाव से बोले, "भाई, इस समय तो धन के अभाव की ही चिंता है। बस, उसी के लिए कोई विकल्प तलाशने का प्रयास कर रहा हूँ।"

"अरे, तुम जैसा शेर आदमी और धन की चिंता! तुम चाहो तो आज ही लाखों रुपए की व्यवस्था हो सकती है।"

"मगर कैसे?"

"पास में जो गाँव है न, उसमें एक सेठ रहता है। गरीबों का खून चूस-चूसकर बहुत धन इकट्ठा कर रखा है उसने। उसके नौकरों से मेरी जान-पहचान है। घर के भीतर पहुँचने में कोई परेशानी नहीं होगी। अगर तुम तैयार हो तो आज ही यह काम पूरा हो सकता है।"

आजाद को पैसे की जरूरत तो थी ही और ऊपर से जब उन्होंने यह जाना कि वह सेठ गरीबों का खून चूसता है तथा अन्यायी है तो वे फौरन तैयार हो गए। उसी रात दल के कुछ व्यक्ति डाका डालने निकल पड़े।

आजाद और उनके दल के लोग धन एकत्रित करने में व्यस्त थे, तभी उन्होंने देखा कि उसी घर की एक सुंदर युवती को उनका साथी छेड़ रहा था। यह वही व्यक्ति था, जो उन्हें यहाँ लेकर आया था। युवती लज्जा और डर से काँप रही थी।

आजाद का खून खौल उठा। वे डाकू नहीं थे। देशभक्ति के जज्बे ने चाहे उन्हें यह काम करने पर विवश कर दिया था, परंतु विचारों से वे डाकू नहीं थे। वैसे भी, वे अखंड बाल ब्रह्मचारी थे। उनका चरित्र बहुत उज्ज्वल था। किसी नारी का अपमान तो वे किसी भी कीमत पर बरदाश्त नहीं कर सकते थे। उनका हाथ अपने माउजर पर पड़ा और दो बार आवाज आई-'धाँय, धाँय'। वह दुश्चरित्र साथी वहीं ढेर हो गया। आजाद ने उस युवती से क्षमा माँगी

और बिना एक पैसा लिये वापस लौट गए।

❑

8

साधु-वेश में

क्रांति की चिनगारी धीरे-धीरे आग पकड़ रही थी। शासन जब अन्यायी हो जाता है तो उसका विरोध तो होता ही है; परंतु क्रांतिकारियों का यह विरोध कोई सामान्य विरोध नहीं था। इस विरोध में सच्चाई एवं त्याग की ताकत छिपी हुई थी और यह ताकत भारतीय क्रांतिकारियों को मातृभूमि के प्रति प्रबल आस्था एवं बलिदान की ताकत से मिलती थी।

उन क्रांतिकारियों का मकसद था-इस अत्याचारी शासन से मुक्ति। वे खुद शासक नहीं बनना चाहते थे। उनके अंदर किसी प्रकार भी स्वार्थ की भावना कदापि नहीं थी; अपितु उनके सारे बलिदान, सारे कृत्य भारतीय जनता को अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए थे और शायद यही कारण था कि ब्रिटिश शासन की नजर में वे सबसे ज्यादा खटकते थे।

वे क्रांतिकारी काशी के एक मोहल्ले में रहते थे। वहाँ एक मकान के आगे एक बोर्ड लगा था-'कल्याण आश्रम'। बाहर से देखने पर वह बिलकुल उजाड़ लगता था।

उस मोहल्ले में रहनेवालों को यही पता था कि इस मकान में कुछ आवारा किस्म के लड़के रहते थे, जो दिन भर बेसुर, बेताल गाया करते थे। उस मकान में रहनेवालों को मोहल्ले का कोई व्यक्ति नहीं जानता था।

मकान का जो बाहरी कमरा था, अकसर उसकी खिड़की खुली ही रहती थी। खिड़की से झाँकने पर कमरे में तबला, हारमोनियम आदि वाद्ययंत्र बिखरे दिखाई देते तथा सामान अस्त-व्यस्त नजर आता था।

यह तो बाहरी कमरे का नजारा था, परंतु भीतरी कमरे का दृश्य इसके बिलकुल विपरीत था। बाहर का कमरा जान-बूझकर वैसा बनाया गया था। जबकि भीतरी कमरे में उस युग के महान् क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकें होती थीं। वास्तव में वह भीतरी कमरा क्रांतिकारी युवकों का अड्डा था।

एक दिन वहाँ दल की बैठक का प्रस्ताव रखा गया। बैठक का प्रमुख विषय था-धन की व्यवस्था। मातृभूमि की सेवा के लिए धन की आवश्यकता थी। दो डकैतियाँ पहले ही असफल हो चुकी थीं, इसलिए क्रांतिकारियों के सामने यह गहन चिंता का विषय था कि आखिर धन की व्यवस्था कहाँ से और कैसे की जाए? धन इकट्ठा करनेवाली विभिन्न योजनाओं पर विचार किया जा रहा था। अब डकैती की योजना बनना तो व्यर्थ ही था। सबको बस एक ही चिंता सताए जा रही थी कि आखिर धन आए तो कहाँ से आए? उन क्रांतिकारियों में एक थे रामकृष्ण खत्री। खत्रीजी अपने छद्म वेश में साधु का रूप बनाकर रहते थे। उनके इस रूप पर शायद ही ब्रिटिश खुफिया पुलिस का कोई कर्मचारी संदेह कर पाता। उनका सिर्फ वेश ही नहीं बल्कि रहन-सहन भी साधु-संन्यासी जैसा था।

रामकृष्ण खत्री भी धन की इस समस्या से काफी चिंतित थे। उन्होंने बिस्मिल को धन जुटाने का एक उपाय बताया। उन्होंने कहा, "पंडितजी, एक उपाय है। अगर हम यह उपाय कर पाएँ तो जितने धन की आवश्यकता हमें है, उससे कहीं ज्यादा हमें प्राप्त हो सकता है।"

सबके चेहरे प्रसन्नता से खिल गए। बिस्मिल ने कहा, "खत्रीजी, अगर कोई उपाय है तो आप बताते क्यों नहीं?

इसमें खतरा चाहे जितना हो, हम करेंगे।"
"पंडितजी, मेरे खयाल से इसमें खतरा तो बिलकुल ही नहीं है। अगर हम सावधानी से काम करें तो बड़ी आसानी से यह धन इकट्ठा कर सकते हैं।"
"अरे खत्री साहब, खतरा भी नहीं है और धन भी मिल सकता है तो आखिर आप बताते क्यों नहीं?" आजाद थोड़ा झुँझलाकर बोले।

दरअसल गाजीपुर में एक साधु है। वह एक बहुत बड़ी कुटी (गद्दी) का महंत है। खूब धन जुटा रखा है उसने। धर्म के व्यवसाय में उसने अच्छी रकम इकट्ठा की है। आजकल वह बीमार चल रहा है। बस, ऐसा समझिए कि मरने ही वाला है। वह अपना कोई योग्य अधिकारी तलाश कर रहा है, ताकि उसे अपनी गद्दी सौंपकर शांतिपूर्वक मर सके। यदि हममें से कोई एक उसका शिष्य बन जाए तो निश्चित रूप से हमें अपनी वांछित रकम से ज्यादा धन प्राप्त हो सकता है और हमारी समस्या आसानी से सुलझ सकती है।

खत्रीजी की बात सबको पसंद आई। हालाँकि यह काम कुछ जटिल था, परंतु जटिलता के मुकाबले मिलनेवाला धन भी कम नहीं था। सब सोच रहे थे कि अगर ऐसा हो सके तो बड़ी आसानी से सभी समस्याएँ सुलझ जाएँगी।

समस्या अब यह थी कि आखिर साधु का शिष्य बनेगा कौन? साधु का शिष्य बनने के लिए साधु जैसा व्यक्तित्व एवं रहन-सहन भी वैसा ही होना चाहिए, अन्यथा लाभ के बजाय हानि भी उठानी पड़ सकती थी।

सभी लोगों ने सर्वसम्मति से चंद्रशेखर आजाद को ही इस काम के लिए चुना। हालाँकि आजाद ने कहा कि यह सब करना एक व्यक्ति को धोखा देना होगा, जो उन्हें कतई मंजूर नहीं था। परंतु बिस्मिल ने उन्हें बहुत समझाया कि यह धोखा कोई धोखा नहीं होगा। साधु कोई गृहस्थ नहीं है, जिससे कि उसके परिवार को परेशानी हो। वह धन कोई-न-कोई तो लेगा ही। फिर वह धन देश के काम ही आ जाए तो क्या बुरा है। विवश होकर आजाद गाजीपुर जाने के लिए राजी हो गए।

वे गाजीपुर में उस महंत के पास पहुँचे और उनसे उनका शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। महंत आजाद की सुंदरता, उनके गठीले शरीर, ब्रह्मचर्य के तेज से उनके दमकते चेहरे को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। आजाद के बात करने का ढंग भी इतना मोहक था कि वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और उन्हें अपना मुख्य शिष्य बना लिया।

चंद्रशेखर प्रकृतितः आजाद प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। इस तरह एक आश्रम में बँधकर रहना उन्हें बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। भला स्वतंत्र रूप से नीले आकाश की गहराइयाँ नापनेवाले किसी पक्षी को सोने का पिंजरा भी कहाँ भाता है। फिर भी, किसी तरह उन्होंने उस आश्रम में दो महीने बिताए। फिर उनका एक-एक पल बड़ी मुश्किल और कठिनाई से गुजरने लगा। उनका मन वहाँ बिलकुल नहीं लग रहा था। वे किसी भी तरह वहाँ से निकल भागना चाहते थे।

एक दिन उन्होंने अपने साथियों को पत्र लिखा---
"महंतजी दिनोदिन मोटे होते जा रहे हैं। अब तो उन्होंने खूब फल-फूल भी उड़ाने शुरू कर दिए हैं। फिलहाल उनके मरने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे हैं। कृपया आप लोग अब मुझे यहाँ से छुड़ा ले जाएँ।"

पत्र काशी में उनके साथियों के पास पहुँचा। मन्मथनाथ गुप्त तथा गोविंद प्रकाश तत्काल गाजीपुर के लिए रवाना हुए। महंतजी के पास पहुँचे। दोनों ही साधु-वेश में थे। भेंट होने पर और कुशल-क्षेम पूछने के बाद उन्होंने आश्रम के परिसर में घूमना शुरू किया।

आश्रम एक मठ के रूप में था। आश्रम को देखकर मन्मथनाथ गुप्त कुछ सोचकर बोले, "अगर किसी तरह यह स्थान अपने दल के पास आ जाए तो बहुत उपयोगी साबित होगा। इसका एक गढ़ के रूप में उपयोग हो सकता है।

साथ ही धन की भी कोई कमी नहीं रहेगी।"

घूमते-घूमते उनकी मुलाकात आजाद से हो गई। मन्मथनाथ गुप्त एवं गोविंद प्रकाश ने उन्हें बहुत समझाया तथा उन्हें कुछ दिन और वहाँ रुकने का अनुरोध किया। इस तरह समझा-बुझाकर दोनों काशी चले आए।

साथियों के मनाने और समझाने-बुझाने के बाद आजाद वहाँ रुक तो गए, परंतु बाद में उनके मन में फिर पूर्ववत् विचार आने लगे। वे अब उस मठ में ऊब गए थे। वे यथाशीघ्र मुक्ति चाहते थे। वे अकसर सोचते---'महंत के मरने के कोई आसार तो हैं नहीं और जब तक महंतजी मरते नहीं हैं, यहाँ रुकना बेकार है। सबकुछ अनिश्चित है यहाँ, फिर मेरे रुकने से क्या फायदा। यहाँ मैं हाथ-पर-हाथ रखकर क्यों बैठा रहूँ। इसलिए तो मैंने घर नहीं छोड़ा था। मैं मातृभूमि की सेवा करने से वंचित हूँ और यहाँ बैठकर साधु महाराज की सेवा कर रहा हूँ।'

यह विचार उनके मस्तिष्क में निरंतर प्रभावी होने लगा। इस विचार के प्रभाव से उनका मन इतना खिन्न रहने लगा कि महंतजी भी अब उनसे पूछने लगे थे कि 'क्या बात है बेटा, इतना परेशान क्यों रहता है तू?' अब आजाद को यह लगने लगा कि कहीं इस खिन्नता के कारण उनका भेद न खुल जाए और उनकी वास्तविकता न जाहिर हो जाए। अत: एक दिन वे बिना किसी को बताए मठ छोड़कर चले गए और इस तरह महंत का धन क्रांतिकारियों के हाथ कभी नहीं आ पाया। उनकी आशाओं पर पूरी तरह से पानी फिर गया। इस तरह धन जुटाने की उनकी एक और कोशिश बेकार साबित हुई।

❑

9

कुशल संगठनकर्ता

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सारा देश एकजुट हो रहा था। हर तरफ आंदोलन चलाए जा रहे थे। ब्रिटिश शासन का पुरजोर विरोध हो रहा था। जगह-जगह संगठन बनाए जा रहे थे और सभी का बस एक ही मकसद था-आजादी, अंग्रेजों की दासता से आजादी।

इस महासंग्राम में आजाद एक अच्छे संगठनकर्ता के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे। उनके प्रयत्नों से कई लोग इस संगठन में शामिल हुए, जो निश्चित रूप से प्रखर राष्ट्र-वादी, वीर तथा देशभक्त थे।

इनमें हर वर्ग, हर क्षेत्र से लोग आया करते थे। हर कार्यक्षेत्र से लोग आते और देश-सेवा के इस महायज्ञ में अपना योगदान देते थे। ऐसा ही एक दक्ष मित्री भी था, जो दल के लोगों के लिए हथियार बनाया करता था।

आजादी की यह कथा संघर्ष और त्याग की वह कथा है जिसे पढ़-सुनकर यह यकीन ही नहीं आता कि हाड़-मांस के कुछ लोग ऐसे भी हुए थे जिनके लिए अपना स्वार्थ, अपनी आवश्यकताएँ अर्थहीन थीं; जिनके लिए देश ही सबकुछ था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कथा में इन क्रांतिकारियों की स्थिति बहुत मार्मिक रही। उन्होंने बड़ी-बड़ी यातनाएँ सहीं; पीड़ा, दुख और दर्द उनके सहचर बन गए थे। हर कष्ट उन्होंने हँसकर सहे। खुशी-खुशी प्राणों की आहुतियाँ दे डालीं।

जिस प्रकार उन्होंने यह सब किया, वह संपूर्ण विश्व के इतिहास में और कहीं मिलना दुर्लभ है।

अपना पेट भरने के लिए, तन ढँकने के लिए ये लोग मजदूरी करते। जिस कमाई से अपना तन ढँकना भी बहुत मुश्किल होता था, उसी में से बड़ी कंजूसी से ये कुछ बचा पाते। इसी धन से ये कुछ शस्त्र आदि खरीदते। शस्त्रों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना भी बड़ी समस्या थी। धन की अत्यधिक कमी के बावजूद वे कभी इन कार्यों के लिए पहले तथा दूसरे दर्जे की टिकट खरीदकर भी यात्रा करते। हथियारों का इस तरह से स्थानांतरण बहुत खतरनाक था। ब्रिटिश सरकार के जासूस कुत्तों की तरह उनकी टोह लेते फिरते थे। फिर भी, अपनी जान पर खेलकर ये क्रांतिकारी उन कामों को पूरा करते थे।

वे कभी भूखे रहकर तो कभी फीकी चाय पीकर ही अपना काम चला लेते। ऐसा भी नहीं था कि ऐसा वे कभी-कभी करते, बल्कि ऐसा उन्हें अकसर ही करना पड़ता। कभी-कभी तो ऐसा भी होता कि महीनों तक उनके शरीर पर लँगोट के अलावा और कोई वस्त्र नहीं होता। फिर भी उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं होती, बल्कि एक तरह का आत्मसंतोष ही मिलता था।

यह जिंदगी उन लोगों ने किसी के दबाव अथवा कहने में आकर नहीं अपनाई थी, बल्कि अपनी खुशी से अपनाई थी। इनकी तो बस एक ही आवश्यकता थी-स्वतंत्रता, एक ही आरजू थी-आजादी और एक ही स्वप्न था-स्वशासन।

एक बार आजाद किसी सोच में गुम बैठे थे। धन का कोई प्रबंध कहीं से भी नहीं हो पा रहा था कि उनका एक शुभचिंतक उनके पास आया। आते ही उसने दो हजार रुपए उनके हाथों पर रख दिए।

"ये रुपए कैसे हैं?" आजाद ने पूछा।

"आजाद भाई, मैंने सुना है कि आपके माता-पिता आजकल काफी परेशानी में हैं। आप यह पैसे कृपा करके उन्हें भेज दें। हम लोगों ने ये पैसे मिलकर इकट्ठा किए हैं। सुना है कि आजकल उन लोगों को खाने-पीने तक के लिए परेशानी उठानी पड़ रही है। आप यहाँ देश-सेवा में लगे हैं। अत: आप इन रुपयों को कृपा करके घर भेज दें।"

उस व्यक्ति की बातों से आजाद के चेहरे पर हलकी मुसकराहट दौड़ गई। उनके मन में उस समय रुपए के प्रबंध की ही बात घूम रही थी। उन्होंने कहा, "बाबा विश्वनाथ ने आपको बहुत उचित समय से भेजा है। हमें दल के संचालन के लिए इस धन की बहुत आवश्यकता थी। सचमुच यह एक दैवी कृपा ही है, जो आपको ईश्वर ने समय पर भेज दिया। यह धन अब हमारे बहुत काम आएगा। आपकी इस सहायता के लिए आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। सचमुच बहुत समय बाद यह धन हमें प्राप्त हुआ है।"

"लेकिन पंडितजी, ये पैसे तो आपके घर के लिए हैं। ये पैसे तो आपके माता-पिता के पास पहुँचने चाहिए।" उस व्यक्ति ने कहा।

"मित्र, क्या केवल मेरे माता-पिता ही कष्ट में हैं? भाई, देश-सेवा में सबको बलिदान करना पड़ता है।" आजाद ने बड़ी ही गंभीरता से कहा।

वह व्यक्ति आजाद का चेहरा देखता रह गया। यह कैसा व्यक्ति है, जो इतनी परेशानी में भी इस तरह की बात कर सकता है। श्रद्धा वनत हो वह व्यक्ति उठकर वहाँ से चला गया।

परंतु ये दो हजार रुपए किसी संगठन को चलाने के लिए आखिर क्या मायने रखते थे। कुछ दिनों बाद उन्हें फिर धन की आवश्यकता पड़ी। इस बार चार हजार रुपए की सख्त आवश्यकता थी।

यूँ तो क्रांतिकारियों से हमदर्दी रखनेवाले लोगों की कोई कमी नहीं थी, परंतु इस तरह बार-बार धन की मदद भी कोई कहाँ से करता। आजाद ने बहुत प्रयास किया, परंतु धन की आवश्यकता की पूर्ति कहीं से भी नहीं हो पा रही थी। आखिर थक-हारकर वे अपने एक मित्र के पास गए। उनका वह मित्र लेन-देन का ही काम करता था। वह आजाद का बहुत सम्मान करता था। आजाद उससे बोले, "भाई, क्या तुम्हारा यह लेन-देन हमारे भी किसी काम आ सकता है?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं आजाद भाई! बोलो, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ?"

"मुझे चार हजार रुपए की सख्त आवश्यकता है। क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो?" आजाद ने कहा।

"लेकिन इस समय तो इतने रुपए मेरे पास नहीं हैं। हाँ, कुछ दिनों बाद मैं तुम्हारी यह मदद जरूर कर दूँगा।"

"रुपए की आवश्यकता तो अभी है भाई। रुपए मुझे आज ही चाहिए। मैं तुम्हारा यह ऋण छह महीने में चुका दूँगा।"

उस आदमी को आजाद पर पूरा विश्वास था। वह जानता था कि आजाद कभी झूठ नहीं बोलते, और वैसे भी आजादी के इस दीवाने को धन अपने लिए तो नहीं चाहिए था। उनकी जो भी आवश्यकता होती थी, वह देश-सेवा के लिए ही थी। उसे पता था कि आजाद के मुँह से निकली बात पत्थर की लकीर होती है। जो बात मुँह से निकल गई, वह निकल गई। चाँद और सूरज अपने स्थान से टल सकते थे, परंतु आजादी के इस मतवाले की कही बात नहीं टल सकती थी।

वह तुरंत उठा और आजाद को इंतजार करने के लिए कहकर चला गया। फिर कुछ देर में ही वह चार हजार रुपए लेकर आ गया। उसने वे रुपए आजाद के हाथों पर धर दिए।

आजाद का काम चल गया। उन्होंने उस व्यक्ति को धन्यवाद दिया और लौट गए।

हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन से जुड़े लोग हर तरफ क्रांति लाना चाहते थे। वे कभी-कभी गुप्त रूप से परचे

भी छपवाकर बाँटते। जन-जन में चेतना के लिए ये परचे जगह-जगह पर बाँटे जाते थे।

एक बार एक ऐसा परचा छापा गया, जिसमें जनता को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उकसाया गया था। उस परचे में क्रांति दलों के कार्यों के बारे में लिखा गया था और जनता को बताया गया था कि किस तरह क्रांति दल के लोग स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहे थे। परचे बाँटने के लिए कुछ ऐसा तय किया गया था कि वे सभी परचे एक ही दिन में सारे देश में बँट जाएँ। यह काम गुप्त रूप से पूरा होना था, क्योंकि अगर सरकार को तनिक भी खबर हो जाती तो वे परचे जब्त कर लिये जाते और गिरफ्तारियाँ आरंभ हो जातीं।

बनारस में परचा बाँटने का काम आजाद को सौंपा गया। उन्होंने यह कार्य इतनी कुशलता के साथ किया कि सभी लोग चकित रह गए। स्कूल-कॉलेजों, मंदिरों-मसजिदों एवं सरकारी कार्यालयों तक में परचे पहुँचे थे। जहाँ देखो, लोग परचे पढ़ते दिखाई देते। आजाद का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि कोई भी उनके कहे काम को टाल नहीं सकता था। परचा बाँटने के इस काम में नौकर, चपरासी और अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं ने उनका साथ दिया था। देश-हित के लिए उन सभी लोगों ने अपना योगदान खुशी से दिया।

❑

10

चाँदनी चौक की एक घटना

एक दिन सवेरे-सवेरे ही चंद्रशेखर से मिलने उनका एक मित्र आ धमका। यह वही मित्र था, जिसने चंद्रशेखर को चार हजार रुपए कर्ज दिए थे। वह व्यक्ति कहने लगा, "देखो आजाद, मुझे रुपए वापस चाहिए।"

"लेकिन मैंने तो छह महीने में वापसी का वादा किया था। अभी तो तीन ही महीने हुए हैं।"

"भाई, तुम सही कह रहे हो; परंतु मेरी परेशानी यह है कि जिस व्यक्ति ने मुझे रुपए दिए थे वह अपना पैसा अभी वापस माँग रहा है और इस समय मेरे पास पैसा नहीं है, वरना मैं ही चुका देता।"

"तुम उससे कहो, हम कुछ समय बाद उसका रुपया वापस कर देंगे। वैसे भी यह लेनदारी का सिद्धांत नहीं है। वादे से पहले रुपए माँगने का क्या मतलब? तुम उसे समझाओ कि हम समय से पहले ही उसका रुपया वापस कर देंगे। वह जितना भी ब्याज लगाएगा, वह भी दे देंगे।" चंद्रशेखर ने कहा।

"आजाद भाई, मैं यह बात उससे कई बार कह चुका हूँ; परंतु वह मानता ही नहीं। कहता है कि इसी समय उसे रुपयों की सख्त आवश्यकता है।"

आजाद थोड़ी देर खामोशी से कुछ सोचते रहे और फिर बोले, "ठीक है, शाम को तुम्हें रुपए मिल जाएँगे।" यह कहकर वह वहाँ से निकल गए।

दिन के दो बज रहे होंगे। दिल्ली के प्रसिद्ध बाजार चाँदनी चौक में लोगों की भारी भीड़ थी। लोग अपने-अपने काम-धंधों में व्यस्त थे। कोतवाली से थोड़ा आगे ही जौहरी की एक दुकान में एक नवयुवक प्रविष्ट हुआ। नवयुवक ने एक-दो चीजें देखीं, कुछ मोल-भाव किया और फिर बाहर की ओर हाथ से इशारा किया। आठ-दस नवयुवक दुकान में आ घुसे। सभी के हाथों में असलहे थे। नवयुवक ने जौहरी के माथे पर अपने पिस्तौल की नली रख दी और बोला, "सेठ, हमें देश के लिए कुछ पैसों की आवश्यकता है, इसलिए ले जा रहे हैं।"

सेठ बेचारा क्या बोलता, चुपचाप उन नवयुवकों को देख रहा था। देखते-ही-देखते उन्होंने चौदह हजार रुपए लूट लिये। किसी की भी हिम्मत नहीं हुई कि आगे बढ़कर उन नवयुवकों को रोके। लोगों की जो सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ थी, वह काम आ गई।

शाम को चंद्रशेखर अपने उस मित्र को चार हजार रुपए देने पहुँच गए। मित्र को चाँदनी चौक वाली घटना की जानकारी हो चुकी थी। उसने मुँह बनाते हुए कहा, "आजाद भाई, रुपया हासिल करने का यह तो कोई तरीका नहीं हुआ।"

आजाद के चेहरे पर मुसकराहट बिखर गई। वे कहने लगे, "तुम ठीक कह रहे हो, वास्तव में यह कोई तरीका नहीं है। परंतु जिस तरीके से आनन-फानन में चार हजार रुपए हासिल हो सकते थे, कृपा करके तुम मुझे वही तरीका बता दो।"

"लेकिन..." मित्र ने कुछ कहना चाहा।

"देखो भाई।" आजाद ने उसे समझाते हुए कहा, "तुमने कभी यह सोचा है कि ये पूँजीपति गरीब व मजलूम लोगों

का खून चूसकर रुपया कमाते हैं और फिर या तो यह रुपया उनके घर पर पड़ा सड़ता है या फिर उनकी मौज-मस्ती की भेंट चढ़ जाता है। ऐसे में अगर यह रुपया देश के काम आ जाए तो कोई गुनाह तो नहीं हो जाएगा।"

"लेकिन तुम्हें डाका डालने में थोड़ी तो हिचक होनी चाहिए। इस तरह किसी को लूटना..."

"माँगने पर वह सेठ मुझे पैसे दे देता क्या?" चंद्रशेखर की आवाज थोड़ा भारी हो चली थी--- "और माँगने पर अगर कोई न दे तो हम क्या करें? अगर हम डाका नहीं डालते हैं तो धन आएगा कहाँ से? यह धन गरीबों का है, सारे देश का है। ऐसे में अगर यह धन देश के काम आ जाए तो क्या बुराई है? आखिर इसका उपयोग हम अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए तो नहीं करते न।"

वह मित्र आजाद की बातों से निरुत्तर हो चुका था। उसके पास पूछने के लिए अब कुछ नहीं बचा था। उसने अपना रुपया वापस लिया और चला गया।

आजाद ऐसे ही थे, बातों के धनी। अगर वे चाहते तो उस मित्र को इनकार कर सकते थे; उसे स्पष्ट रूप से कह सकते थे कि जब वापसी का समय छह महीने निर्धारित हो चुका था तो वे बीच में रुपया नहीं देंगे; परंतु उन्होंने वैसा नहीं किया, बल्कि अपनी जान की बाजी लगाकर भी वचन पूरा किया।

आजाद के अंदर सामान्य मानवीय गुण नहीं थे। उनके हाथ गोली चलाने में बहुत निपुण थे। उनका निशाना कभी नहीं चूकता था। वे हमेशा पिस्तौल अपने पास रखते थे; परंतु कभी विषम-से-विषम परिस्थिति में भी उन्होंने किसी बेगुनाह की तरफ अपनी पिस्तौल का रुख नहीं किया। कोई बेगुनाह उनके हाथों घायल भी हुआ हो, ऐसी एक भी घटना सारे इतिहास में नहीं मिलती।

एक बार चंद्रशेखर अपने साथियों के साथ एक जंगल से होकर गुजर रहे थे। सभी लोग आपस में बातचीत करते हुए चले जा रहे थे, तभी एक साथी ने कहा, "आजाद भाई, जरा आपकी निशानेबाजी देखी जाए। हम लोगों का थोड़ा मनोरंजन हो जाएगा और आपको अपनी निशानेबाजी को परखने का मौका भी मिल जाएगा।"

आजाद रुक गए और थोड़ा हँसकर बोले, "ठीक है, बताओ, कहाँ निशाना लगाऊँ?"

"यह हम आप पर ही छोड़ते हैं। आप जहाँ ठीक समझें, निशाना लगाएँ। हमें तो देखने से मतलब है।"

आजाद ने इधर-उधर नजर डाली और इशारा करते हुए बोले, "वह देखो, यहाँ से लगभग 30 गज पर जो पेड़ दिखाई दे रहा है, उसका जो छोटा सा पत्ता लटक रहा है, मैं उसी पर निशाना लगा रहा हूँ।"

सभी की नजरें उसी पेड़ के छोटे से पत्ते पर जाकर रुक गईं।

'धाँय', एक जोरदार आवाज के साथ गोली ने माउजर छोड़ी; पर निशाना चूक गया।

पिस्तौल से दूसरी गोली भी छूटी, परंतु पत्ता वहीं एक तरफ लटक रहा था। तीसरी, चौथी और पाँचवीं इस तरह पाँच गोलियाँ चलीं; परंतु पाँचों बेकार हो गईं। पत्ता वहीं-का-वहीं लटक रहा था। एक भी गोली पत्ते को छू नहीं पाई। सभी को बेहद आश्चर्य हो रहा था, परंतु सबसे ज्यादा आश्चर्य तो स्वयं आजाद को हो रहा था। वे चौंककर बोले, "आश्चर्य है, आज तक मेरा निशाना कभी नहीं चूका, आज पता नहीं क्या हो गया। पत्ते पर एक भी गोली नहीं लगी, ऐसा क्यों?"

सभी पेड़ के पास गए। सामने से पत्ते की ओर देखा तो सबके मुँह से 'वाह' निकल गया। पत्ता पाँच जगह से छिदा हुआ था। आजाद की निशानेबाजी आज तक बेमिसाल मानी जाती है और ऐसा माना जाता है कि उस तरह का निशानेबाज आज तक कम ही हुआ है।

❑

11

माँ का आँचल

पहले ही जिक्र किया जा चुका है कि आजाद के एक बड़े भाई थे-सुखदेव। जिस समय आजाद काशी में पढ़ रहे थे, सुखदेव पोस्टमैन बन गए थे। यह नौकरी उन्होंने केवल दो साल की थी कि उन्हें भयंकर रूप से निमोनिया हो गया। स्वास्थ्य कारणों के चलते उन्होंने नौकरी छोड़ दी। लेकिन बहुत चिकित्सा कराने के बाद भी कोई सार्थक परिणाम सामने नहीं आया और अंतत: जीवन-मृत्यु के बीच संघर्ष करते हुए वे मृत्यु से हार गए और सन् 1925 में उनका देहांत हो गया। भाई की मृत्यु के समय आजाद का कोई अता-पता नहीं था।

अब तक उनके पिता को गुजरे भी दो साल हो चुके थे। माता जगरानी देवी कानपुर में एक घर में अकेली रह रही थीं। पति तथा एक पुत्र तो यह संसार छोड़कर जा चुके थे और एक पुत्र वीतरागी बनकर माँ भारती की सेवा में स्वयं को समर्पित कर चुका था।

जगरानी देवी का छोटा बेटा आजाद अधिकतर बाहर ही रहा करता था। कभी चार दिन तो कभी आठ दिन बाद घर आता था और एक दिन या एक रात से ज्यादा नहीं रुकता था। कभी-कभी तो माँ जगरानी देवी अपने बेटे को देखने के लिए तरस जातीं। इस बार आजाद को घर से गए दस-बारह दिन बीत चुके थे। घर पर माँ बैठी सोच रही थी कि 'आजाद कहाँ होगा? बेटा सरकार के विरोध में लड़ रहा था, देश की सेवा में लगा था; लेकिन ये अंग्रेज तो बहुत निर्दयी हैं, अपने विरोधियों को मार डालते हैं। हे भगवान्! मेरे बेटे की रक्षा करना।'

माँ उदास थी। पिछला जीवन चलचित्र की भाँति उसके सामने घूम रहा था। तीन बेटे तो जन्म लेते ही उसे छोड़कर चले गए, एक बेटा जवान होकर गुजर गया था। कालदेवता को शायद उसकी आवश्यकता आ पड़ी थी। अब रहा-सहा एक आजाद था-उनका एकमात्र अवलंब, उनके जीवन का एकमात्र सहारा; परंतु अब वह पता नहीं कहाँ होगा। माँ होने का कौन सा अरमान पूरा हुआ उनका। शायद ईश्वर कुछ लोगों के नसीब में उनके किसी अरमान की पूर्ति नहीं लिखता।

माँ इन्हीं खयालों में गुम थीं कि तभी आजाद आ गए। उन्हें देखकर माँ को तो जैसे मुँहमाँगी मुराद मिल गई। उनके दो साथी भी उनके साथ थे। उन्होंने आते ही कहा, "माँ, बहुत भूख लगी है, कुछ खाने को दो न।"

आजाद को देखते ही माँ का रोम-रोम खिल उठा था। वे बोलीं, "बेटा, मैं अभी खाना बनाती हूँ, तब तक तू पेड़े खा। तुझे पेड़े बहुत अच्छे लगते हैं न। मैंने तेरे लिए पहले से ही पेड़े लाकर रखे थे। रोज तेरे बारे में ही सोचती रहती हूँ। दिन-रात तेरी राह देखती हूँ। ईश्वर का लाख-लाख धन्यवाद कि तू ठीक-ठाक घर आ गया। ले, अपने साथियों के साथ पेड़े खा, तब तक मैं खाना बनाती हूँ।"

तीनों साथियों ने पेट भरकर पेड़े खाए और सो गए।

माँ इधर रसोईघर में खाना बना रही थीं। वे कई व्यंजन बना रही थीं, जिनमें पूड़ी, सब्जी, हलवा वगैरह शामिल थे। वे सोच रही थीं कि उनके बेटे ने न जाने कब से अच्छा खाना नहीं खाया होगा।

माँ ने उन्हें जगाया। तीनों ने स्नान किया, खाना खाया, फिर चलने की तैयारी करने लगे। माता जगरानी देवी

चुपचाप सब देख रही थीं। उनके अंदर मानो कुछ टूट-सा रहा था। उनका गला भर आया। वे बोलीं, "बेटा, क्या तू एक रात भी नहीं रुक सकता माँ के पास?"

"नहीं माँ, आज नहीं रुक सकता। बहुत से काम हैं।"

"काम तो तू हमेशा ही करता है। क्या तू अपनी माँ के लिए एक दिन भी नहीं रुक सकता? बेटा, तुझे मेरी ममता की तनिक भी परवाह नहीं है?"

"माँ, ऐसा मत कह। ममता के लिए ही तो यह सब कर रहा हूँ मैं। माँ दुख उठाए और बेटा चुपचाप देखता रहे, उस बेटे को धिक्कार है, माँ।"

माँ चंद्रशेखर की बात समझ नहीं पाईं। वे सोचने लगीं कि यह मुझे कौन सी खुशी दे रहा है। वे बोलीं, "बेटा, तू यह क्यों नहीं समझता कि मेरा सुख तो तभी है, जब तू मेरी आँखों के सामने रहे। मेरे पास से दूर जाकर तू मुझे कौन सा सुख दे रहा है।"

"माँ, तुम्हारा यह सुख झूठा है। भारत माँ, जो तैंतीस करोड़ पुत्रों की माता है, आज गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई कराह रही है। उसके पुत्र निकम्मे हो रहे हैं। वह तो मेरी, तुम्हारी, हर भारतवासी की माँ है। मुझसे उसका दुख नहीं देखा जाता।"

"परंतु बेटा, तू कैसे उसका दुख दूर कर सकता है?"

"इस देश को गुलामी से आजाद कराकर, माँ।"

आजाद की बात सुनकर माँ का हृदय काँप उठा। वे डरकर बोलीं, "बेटा, तू इतनी बड़ी अंग्रेजी सत्ता का विरोध कर रहा है। कहीं वे तुम्हारा कोई अनिष्ट न कर दें।"

आजाद हँसकर बोले, "माँ, तू आजाद की माँ होकर ऐसी बात कर रही है। जब देश में तैंतीस करोड़ चंद्रशेखर हों तो अंग्रेज एक चंद्रशेखर का अनिष्ट कर भी दें तो क्या फर्क पड़ जाएगा। यदि यह चंद्रशेखर मर भी गया तो यकीन करो माँ, इस देश में हजारों चंद्रशेखर और पैदा होंगे। एक चंद्रशेखर मरकर हजारों चंद्रशेखरों के लिए प्रेरणा बन जाएगा। सब एक हो उठेंगे और देश में जो लहर उठेगी, उसमें यह ब्रिटिश सत्ता रेत के किले की तरह ढह जाएगी। देश में क्रांति की लहर दौड़ उठेगी। हर तरफ अंग्रेजों की पराजय होगी और ब्रिटिश राज का तख्ता पलट जाएगा।"

"बेटा, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है! देश के बड़े-बड़े नायक महात्मा गांधी, मोतीलाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय इन सबने पहले बहुत कुछ सीखा और तब देश की सेवा में जुटे। तुम्हें भी पहले शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, उसके बाद देश-सेवा में लगो। फिर मैं कुछ नहीं कहूँगी।"

"माँ, शायद तू ठीक कह रही है; परंतु जीवन भी कभी ऐसे मोड़ पर आ खड़ा होता है कि व्यक्ति को स्वयं को ईश्वरीय व्यवस्था के आगे सौंप देना पड़ता है, जहाँ मानव की अपनी सीमाएँ इतनी संकुचित और अर्थहीन होकर रह जाती हैं कि वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता। जिन लोगों का नाम तुम ले रही हो, उन्होंने पूरी तरह सोच-समझकर देश-सेवा में कदम रखा है; परंतु मुझे तो सोचने-समझने का मौका ही नहीं मिला। बस, एक पल में ही लगा कि मेरी माँ दुखी व पीड़ित होकर मुझे पुकार रही है और मैं अनजाने, अनसोचे ही इस आग में कूद पड़ा। अपने कर्तव्य की पुकार पर मेरा यह समर्पण शायद ईश्वरीय व्यवस्था के उसी चक्र का परिणाम था, जो निरंतर संपूर्ण संसार की व्यवस्था को अपनी इच्छानुसार संचालित कर रही है। अत: हे माँ! अब वह वक्त मैं बहुत पीछे छोड़ आया हूँ। अब तो चाहूँ, तब भी वहाँ लौटकर वापस नहीं जा सकता। आज पूरा देश गुलामी की इन जंजीरों को तोड़ने के लिए व्याकुल है। ऐसे में मेरी वापसी के सारे रास्ते बंद हो चुकेहैं।"

"लेकिन तुम मुट्ठी भर नौजवान कैसे इतनी बड़ी राजसत्ता को चुनौती दे पाओगे, बेटे? वे लोग संख्या में बहुत अधिक हैं और तुम लोग बहुत कम, फिर उनके पास शासन-सत्ता की ताकत भी है।"

"माँ, एक चिनगारी से बड़ी-से-बड़ी बड़वाग्नि लग जाती है। बूँद-बूँद करके सागर बन जाता है। माना कि हम संख्या-बल में बहुत कम हैं, परंतु तुम देखना माँ, वह दिन दूर नहीं है, जब यह सारा देश हमारे साथ होगा और हम सब मिलकर बड़ी आसानी से गुलामी की जंजीरों को तोड़कर फेंक देंगे। जिस दिन यह सारा देश एक हो गया माँ, उस दिन गुलामी की इन जंजीरों को तोड़कर फेंकने में मिनट भर का भी समय नहीं लगेगा।"

"तेरी बड़ी-बड़ी बातें मेरी समझ में तो नहीं आतीं, लेकिन इतना तो मैं अवश्य ही चाहती हूँ कि जल्दी-से-जल्दी इस देश में इस ब्रिटिश शासन का अंत हो जाए और हम माँओं को उनके पुत्र वापस मिल जाएँ। इस देश में सुशासन की स्थापना हो।"

"यही स्वप्न तो हम सभी लोगों का है माँ, और इसी स्वप्न को पूरा करने के लिए हम अपने प्राणों की बाजी लगाए हुए हैं। इसलिए इस देश की माताओं को विशेष त्याग की आवश्यकता है, माँ। शिवाजी की माता जीजाबाई अगर वीर माता नहीं होतीं तो क्या महाराष्ट्र को शिवाजी स्वतंत्र करवा पाते? आज देश की सभी माताओं को जीजाबाई बनना होगा, तभी इस देश का कल्याण होगा और उसकी शुरुआत तुमसे ही हो, माँ। मैं चाहता हूँ कि तुम भी माता जीजाबाई की तरह मुझे आशीर्वाद दो कि मैं अपने लक्ष्य में कामयाब हो सकूँ।" यह कहकर आजाद ने माँ के चरण छू लिये।

"और अगर कहीं सरकार ने तुझे जेल में डाल दिया तब क्या होगा, पुत्र?"

"बुरे कर्म करके जेल जाना तो निश्चित रूप से बुरा ही कहलाता है, माँ! परंतु अपने देश की आजादी के लिए लड़ते हुए जेल जाना तो बुरा नहीं है, माँ। देश की सेवा में जेल जाना तो किसी तीर्थाटन की तरह ही है। माँ, तुम्हें पता है न, दुष्टों का नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जेल में ही पैदा हुए थे। अंग्रेजों के अत्याचार को अब बरदाश्त नहीं किया जा सकता है, माँ। वह जेल भेजती है तो भेज दे, परंतु अब किसी भी तरह उसके अन्याय का समापन होना सुनिश्चित है। वैसे तुम्हें मैं एक बात का यकीन दिलाता हूँ, किसी भी स्थिति में सरकार मुझे जेल नहीं भेज सकती। तुम्हारा पुत्र आजाद है और आजाद रहेगा। ब्रिटिश सरकार का कोई भी सिपाही तुम्हारे बेटे को जीवित हाथ नहीं लगा पाएगा। अंग्रेजों की दुष्टता को समाप्त होना ही है, माँ। यह अत्याचार अब यह देश ज्यादा समय तक बरदाश्त नहीं कर पाएगा। यह साम्राज्यवादी तंत्र अब शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।"

"अच्छी बात है पुत्र, तुझे जैसा ठीक लगे वैसा कर। मेरी तो बस यही कामना है कि तू युग-युग जिए, तेरा बाल भी बाँका न होने पाए। ईश्वर तेरे अनिष्ट की पूर्ति में सदैव तेरे साथ रहे। मेरा आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ रहेगा, पुत्र।"

"माँ, तेरा आशीर्वाद ही तो मेरी एकमात्र शक्ति है। मैंने तेरी कोख से जन्म लिया है माँ, और आज तुझसे वायदा करता हूँ कि जीवन में कभी कोई ऐसा काम नहीं करूँगा, जिससे तेरी कोख को शर्मिंदा होना पड़े। तेरे दूध को लजानेवाला कोई भी कृत्य मैं नहीं करूँगा। माँ, यह संसार तो नाशवान् है ही। संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसका नाश नहीं। राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे देवता भी इस संसार में सदैव सशरीर तो नहीं रह पाए न। एक-न-एक दिन इस देश का कण-कण तुम्हारा नाम लेकर कहेगा कि अगर माता हो तो तुम जैसी।" कहते-कहते आजाद का कंठ भर आया। वे भावुक हे गए।

"जाओ पुत्र, मेरे लाल! मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर दो।" जगरानी देवी ने आजाद के माथे पर अपना हाथ रखते हुए कहा।

उन तीनों ने जगरानी देवी के चरण-स्पर्श किए और वहाँ से चले गए।

12

काकोरी ट्रेन डकैती

क्रांति दल के लिए धन की व्यवस्था किसी भी तरह नहीं हो पा रही थी और धनाभाव के कारण तमाम कार्य बाधित थे। एक बार बैठक में फिर किसी डकैती की चर्चा आने पर आजाद ने कहा कि अब हम आम जन के यहाँ डकैती नहीं डालेंगे। इससे समाज में गलत संदेश जाता है। पं. रामप्रसाद बिस्मिल ने भी उनकी इस बात को स्वीकार किया। परंतु सवाल तो अब भी वही था कि धन आए कहाँ से और धन के बिना तो कोई काम चल नहीं सकता था।

अंत में यह निश्चय किया गया कि अब सरकारी खजाने को लूटा जाए। आखिर वह पैसा तो देश का ही है, जिसे यह सरकार देश के लोगों को ही गुलामी की जंजीरों में जकड़ने के लिए इस्तेमाल करती है। हालाँकि दल के कुछ सदस्य इस विचार से सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि सरकारी खजाने को लूटने का अर्थ होगा-सरकार को सीधे चुनौती देना और तब सरकार अपनी सारी ताकत उन्हें गिरफ्तार करने में लगा देगी। जब तक दल पूर्णत: मजबूत नहीं हो जाता, ऐसा करना हितकर नहीं होगा। परंतु दल के अधिकांश लोगों की राय यही थी कि अगर लूटना ही है तो सरकारी खजाने को ही लूटा जाए। आगे जो होगा, देखा जाएगा। वैसे भी सरकार कौन सा उन्हें छोड़ने वाली थी। वे तो वैसे भी सरकार की आँखों की किरकिरी बने हुए थे। आखिरकार सबने एक मत से सरकारी खजाना लूटने की सहमति दे दी।

तय किया गया कि 8 नंबर डाउन पैसेंजर, जो मुरादाबाद की ओर से आती है, को काकोरी स्टेशन के आउटर सिग्नल पर रोककर लूटा जाए। आउटर सिग्नल पर आते-आते ट्रेन की गति काफी धीमी हो जाती थी। ऐसे में उसे उसी जगह पर रोककर लूटना ज्यादा आसान था। दल में लोगों को पक्का पता था कि इसी ट्रेन से सभी स्टेशनों पर से बटोरा गया पैसा लखनऊ के सरकारी खजाने में जमा करने के लिए भेजा जाता था।

9 अगस्त, 1925 का दिन था। उस दिन हवा की गति रोज से कुछ ज्यादा तेज थी। मुरादाबाद की ओर से आनेवाली 8 नंबर डाउन पैसेंजर आकर बालामऊ स्टेशन पर रुकी।

बालामऊ स्टेशन से तीन लोग दूसरे दर्जे में सवार हुए और सात लोग तीसरे दर्जे में। इंजन ने सीटी दी और ट्रेन चल पड़ी।

ज्यों ही वह ट्रेन काकोरी स्टेशन के आउटर सिग्नल पर पहुँची, किसी ने जंजीर खींच दी और ट्रेन रुक गई। किसी भी यात्री को इस बात का अंदाजा नहीं था कि क्या होने वाला है। वैसे भी, इस योजना को बनाते समय ही यह बात तय कर ली गई थी कि किसी भी यात्री को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा। अगर बहुत आवश्यक हुआ तो हवाई फायर करके धमकी दी जा सकती थी।

गाड़ी रुक जाने के बाद बालामऊ से सवार सभी दस-के-दस यात्री नीचे उतर आए। दसों लोगों के हाथों में भरी हुई पिस्तौलें थीं। इंजन के ड्राइवर और फायरमैन को उनमें से दो लोगों ने जाकर पहले ही बाँध दिया था। अब एक आदमी गार्ड के डिब्बे में चढ़ गया और जाकर गार्ड के सीने पर पिस्तौल रख दी। गार्ड को चुपचाप खड़े रहने का आदेश दिया गया।

चार लोगों ने गाड़ी के दोनों ओर घूमकर कहा कि कोई भी व्यक्ति हिलने-डुलने अथवा ट्रेन से उतरने का प्रयास न करे, वरना गोली मार दी जाएगी। हम क्रांतिकारी हैं और सरकार द्वारा जनता से लूटे गए खजाने को वापस लेने आए हैं। हम किसी भी यात्री को कोई नुकसान पहुँचाना नहीं चाहते। इसलिए कोई भी यात्री बिना मतलब शरारत करने का प्रयास न करे।

यात्री चुपचाप अपने डिब्बे में बैठे रहे। ट्रेन से सरकारी खजाने को बाहर निकाला गया, जो एक सीलबंद संदूक में रखा था। हथौड़े से उसका ताला तोड़ा जाने लगा कि अचानक लगा जैसे सबका खून जम-सा गया हो। दूर किसी ट्रेन के आने की आवाज आ रही थी।

बिस्मिल ने धीरे से कहा, "लगता है, पंजाब मेल आ रही है। उसी ट्रेन का समय हो रहा है। सबने पूरी सावधानी के साथ अपने हथियार नीचे कर लिये। पंजाब मेल धड़धड़ाती हुई गुजर गई। सबने राहत की साँस ली। एक बड़ी मुसीबत टल गई थी।

ट्रेन गुजर जाने के बाद भी सभी लोग कुछ देर तक शांति से खड़े रहे। थोड़ी देर बाद संदूक का ताला टूटने पर सब रुपया निकाल लिया गया। दल लखनऊ की ओर जानेवाले जंगली रास्ते से वापस लौट गया।

सरकारी खजाने को लूटनेवाले ये लोग थे--पं. रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ एवं चंद्रशेखर आजाद। अन्य लोगों में मन्मथनाथ गुप्त, बनवारी लाल, राजेंद्र लाहिड़ी, मुकुंदीलाल, शचींद्रनाथ, मुरारीलाल और केशव चक्रवर्ती थे। यह योजना रामप्रसाद बिस्मिल ने बनाई थी।

यह लूट ब्रिटिश सरकार के मुँह पर एक करारा तमाचा थी, सरकार के खिलाफ एक खुली चुनौती। गोरी सरकार थर्रा उठी। सरकारी अमले सक्रिय हो उठे। गुप्तचर विभाग सक्रिय हो गया। क्रांतिकारियों की खोज में सरकार ने अपनी सारी ताकत झोंक दी। चारों तरफ क्रांतिकारियों की खोज होने लगी।

25 अगस्त को पुलिस ने उत्तर प्रदेश के उन सभी नगरों में छापे मारे, जहाँ क्रांतिकारियों के होने की जरा भी उम्मीद थी। थोड़ा सा भी संदेह होने पर पुलिस उस जगह की मिट्टी खोद डालती थी। जगह-जगह पुलिस का जाल बिछा दिया गया था।

आखिरकार आजाद और उनके कुछ साथियों को छोड़कर लगभग सभी क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

गिरफ्तार क्रांतिकारियों में कुछ लोग कच्ची मिट्टी के बने थे। पुलिस की पिटाई के सामने वे टूट गए तथा दल के कई गुप्त ठिकानों के बारे में पुलिस को बता दिया। बहुत से अड्डों से पुलिस ने क्रांतिकारियों को खोज निकाला। हजारों क्रांतिकारी जेल में ठूँस दिए गए।

अदालतों में इन मातृभूमि-प्रेमियों पर मुकदमा चलाया जाने लगा। कितने आश्चर्य की बात थी कि इन राष्ट्र-प्रेमियों पर इनके ही राष्ट्र में मुकदमा चलाया जा रहा था। कई वकीलों ने इन क्रांतिवीरों के मुकदमे की पैरवी बिना फीस लिये की। लेकिन सरकार तो पहले से ही यह इरादा करके बैठी थी कि किसी भी कीमत पर दल को छोड़ना नहीं था। अत: इन पैरवियों का कोई फायदा नहीं हुआ। जिन्होंने क्षमा माँग ली तथा आइंदा किसी भी क्रांतिकारी गतिविधि में भाग न लेने की लिखित प्रतिज्ञा की, उन्हें छोड़ दिया गया। अन्य वीरों को कालेपानी की सजा दी गई।

रामप्रसाद बिस्मल, अशफाक उल्ला, रोशन सिंह तथा राजेंद्र लाहिड़ी को सरकार ने सजा-ए-मौत सुना दी। देश भर में खलबली मच गई। अदालत के इस फैसले की सारे देश में भरपूर आलोचना भी हुई; परंतु इससे सरकार को क्या फर्क पड़ता था।

बिस्मिल बड़े अच्छे शायर थे। अपनी सजा सुनकर उन्होंने एक शेर पढ़ा, जिसमें उनका जोश और देशभक्ति

देखते ही बनती है---
"होश में आ जाओ बुलबुलो, अब चमन खतरे में है।"
यह देशवासियों के लिए एक संदेश था।
क्रांतिकारियों के लिए फाँसी का तख्ता तैयार कर लिया गया। जेलर, जल्लाद, डॉक्टर, मजिस्ट्रेट सामने खड़े थे। उनके चेहरे पर मौत की एक काली सी परछाईं नजर आ रही थी। परंतु जिन्हें फाँसी दी जाने वाली थी, उनके चेहरों पर हलकी-सी भी शिकन नहीं थी। मौत के भय का एक छोटा सा निशान भी उन दीवानों के चेहरों पर नजर नहीं आ रहा था। मौत की उस घड़ी में भी सभी मुसकरा रहे थे और उद्घोष कर रहे थे-'वंदे मातरम्', 'भारत माता की जय'।
क्रांतिकारियों को फाँसी के तख्ते के सामने लाया गया। सबसे पहले पं. रामप्रसाद बिस्मिल तख्ते पर चढ़े। जल्लाद ने उनके गले में फाँसी का फंदा डाल दिया। 'बिस्मल' ने अपना आखिरी शेर फाँसी के तख्ते पर चढ़कर पढ़ा, जो आज भी इतिहास के सुनहरे पन्नों में दर्ज है, जिसे उर्दू साहित्य एवं क्रांति के इतिहास में हमेशा याद रखा जाएगा---
शहीदों की चिताओं पर, लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का, यही बाकी निशाँ होगा।।
बिस्मिल के पैरों के नीचे से फाँसी का तख्ता खिसका और वह परम वीर शहीद हो गया।
इसी तरह अशफाक, रोशन सिंह और राजेंद्र लाहिड़ी को भी फाँसी के फंदे पर लटका दिया गया। माँ भारती के चरणों में चार फूल अर्पित हो गए।
इन शहीदों की गिरफ्तारी के बाद आजाद ने बहुत चाहा कि जेल पर आक्रमण करके इन क्रांतिकारियों को छुड़ा लिया जाए, इसके लिए बहुत प्रयत्न भी किए गए; परंतु संगठन बिखर चुका था। उनके सभी प्रमुख साथी जेल में थे। रामप्रसाद बिस्मिल के बाद उन जैसा नेतृत्वकर्ता भी कोई नहीं था। अत: आजाद के लाख प्रयास के बाद भी कुछ नहीं हो पाया और वे चारों वीर फाँसी पर लटका दिए गए।
आजाद बहुत दुखी थे। अगर यह कहा जाए कि वे बिलकुल टूट गए थे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। रामप्रसाद बिस्मिल जैसा नेतृत्वकर्ता और अशफाक जैसा जोरदार साथी मिलना बहुत मुश्किल था। परंतु नियति ने जहाँ पहुँचा दिया था, उसका निर्वाह तो करना ही था।
सच तो यह था कि वह जीवन ही नियति का खेल था। नियति का चक्र मनुष्य को पल-पल भटकाता रहता है। मातृभूमि के लिए अपना सबकुछ समर्पित कर देनेवाले वे महावीर जीवन के किसी भी क्षेत्र में होते तो अत्यंत सफल व्यक्ति होते। परंतु सफलता और सार्थकता में यही तो अंतर है। सफलता समाज में स्थापित करती है, सफल व्यक्ति समाज में अपनी उपस्थिति बहुत पुरजोर तरीके से दर्ज करता है; परंतु उसकी सफलता बस उसके जीवनकाल तक ही सीमित रहती है। जबकि सार्थक व्यक्ति प्रकृति के लिए एक अनमोल निधि होता है। वह चाहे सफल हो या नहीं, परंतु प्रकृति की नैसर्गिक व्यवस्था में अपनी भागीदारी अवश्य दर्ज कराता है। आजाद, बिस्मिल, अशफाक, भगतसिंह जैसे लोग चाहे सफल हुए हों या नहीं, परंतु वे सब सार्थक व्यक्ति थे। उनका जीवन सार्थक था।
सरकार की नजर में अब आजाद एकमात्र ऐसे क्रांतिकारी थे, जो कभी भी सरकार को चुनौती दे सकते थे। अत: ब्रिटिश सरकार के लिए आजाद की गिरफ्तारी बहुत आवश्यक थी। इसके लिए उसने एक घोषणा की, जिसके बड़े-बड़े पोस्टर छप गए। अन्य प्रचार माध्यमों से भी इस घोषणा को बार-बार दोहराया गया। वह घोषणा थी--'चंद्रशेखर आजाद को पकड़वाने में मदद करनेवालों को बहुत सा इनाम दिया जाएगा।'

पुलिस की यह घोषणा चारों तरफ फैल गई। आजाद तक भी यह घोषणा पहुँची; परंतु वे अब इन बातों से ऊब चुके थे। सरकारी घोषणाओं एवं उसके जाल बिछाने से अब उनका कोई मतलब नहीं रह गया था। वे तो बस एक निष्काम कर्मयोगी की भाँति अपना कार्य कर रहे थे। वे इस बात के प्रति दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि जीवित रहते वे ब्रिटिश सरकार के हाथों में नहीं आएँगे।

इस बीच आजाद झाँसी के निकट एक गाँव ढिमरपुरा के जंगलों में रहने लगे। उनका संपर्क झाँसी के क्रांतिकारियों से हो गया। उन्होंने ओरछा के जंगलों में अपने दल के सदस्यों को हथियार चलाना एवं सिखाना शुरू कर दिया।

परंतु आजाद के जीवन में स्थिरता लिखी ही नहीं थी। सच तो यह था कि स्थिरता उनकी प्रवृत्ति में भी नहीं थी। वे बहुत जल्दी जंगली जीवन से ऊब गए। उन्होंने ढिमरपुरा में ही ब्रह्मचारी का वेश बनाया, एक झोंपड़ी बनाई और उसी में रहने लगे।

आजाद हनुमानभक्त बाल ब्रह्मचारी थे, अत: वही रूप रखना उनके लिए ज्यादा आसान था। धीरे-धीरे आसपास के गाँवों में उनके व्यक्तित्व की चर्चा होने लगी। गाँववाले उनका बहुत सम्मान करते थे। धीरे-धीरे झोंपड़ी पर एक मंदिर बन गया। उन्हें कोई पहुँचा हुआ साधु-संत समझकर धीरे-धीरे वहाँ लोगों की भीड़ जुटने लगी।

आजाद को अब इस भीड़ से परेशानी होने लगी। वे एकांतवास चाहते थे और यहाँ आलम यह था कि लोगों की भीड़-की-भीड़ उन्हें हर पल घेरे रहती थी।

एक दिन उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "भाइयो एवं बहनो! मैं कोई बड़ा साधु नहीं हूँ। मेरे पास कोई दैवी शक्ति भी नहीं है। मैं तो उस परमात्मा का एक साधारण-सा बंदा हूँ, जो उसे याद करते हुए उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए उनके चरणों में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। आप बेकार यहाँ आकर अपना समय नष्ट न करें।"

परंतु उनकी इस बात को लोगों ने उनकी निरहंकारता समझकर उनका और भी सम्मान करना शुरू कर दिया। जितना ही वे लोगों को मना करते उतना ही लोग उनके पास आते। आजाद को अब उन आगंतुकों से काफी परेशानी होने लगी। एक दिन आजाद के पास उस गाँव के जमींदार भी पहुँचे। आजाद ने उनसे प्रार्थना की, "महोदय, मैं एक ब्रह्मचारी हूँ। मेरा नाम हरिशंकर है। कृपा करके आप मुझे रहने के लिए कोई उचित जगह दे दीजिए। मैं एकांतवास करना चाहता हूँ, जिसमें ये भीड़ बड़ी बाधक सिद्ध होती है।"

जमींदार आजाद की बातों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपने ही घर में आजाद के रहने की व्यवस्था कर दी। उस जमींदार का आजाद पर विश्वास काफी बढ़ चुका था। उन्होंने अपनी बंदूकें, पिस्तौलें और कारतूस उनके सुपुर्द कर दिए। अब आजाद ने अपने साथियों से फिर से संपर्क साधा और वहाँ के जंगलों में ही निशानेबाजी का अभ्यास करने लगे। कभी-कभी जमींदार भी उनके साथ शिकार पर जाया करते थे और उनके साथ निशानेबाजी में भी रुचि लेते।

एक दिन जमींदार से आज्ञा लेकर आजाद ढिमरपुरा छोड़कर झाँसी रहने के लिए आ गए। वहाँ वे एक मोटर कंपनी में काम करने लगे। वहीं उन्होंने अच्छी ड्राइविंग भी सीख ली। उस समय किसी को जरा भी शक नहीं था कि हरिशंकर ही आजाद हैं।

उत्तर भारत में उन्हीं दिनों आजादी का आंदोलन पुन: जोर पकड़ने लगा था। उत्तर प्रदेश पुलिस किसी भी कीमत पर आजाद को पकड़ना चाहती थी। उसने अपना सारा जोर उन्हें पकड़ने पर लगा दिया था। पुलिस के बढ़ते दबाव को देखकर आजाद बंबई निकल गए। बंबई की सड़कों पर भटकते-भटकते कई दिन बीत जाने के बाद अंतत: विवश होकर वे बंबई बंदरगाह पर कुलियों के साथ भरती हो गए। वे वहाँ बोझा ढोकर अपनी जीविका कमाते और

रात को वहीं किसी गोदाम में सो जाते।

अपने चार साथियों की फाँसी की घटना ने उनके दिल-दिमाग पर बुरी तरह से असर किया था। उन्हें ऐसा लगता था मानो वे कुछ भी कर पाने में असमर्थ हो गए थे। यह असमर्थता उनके मस्तिष्क को किसी जहरीले कीड़े की तरह बार-बार डसती थी। वे कुछ भी नहीं कर पा रहे थे।

कुछ दिन बंबई में रहकर वे कानपुर चले गए। वहाँ से वीर सावरकर के पास चले गए तथा उनसे सारी बात कही।

❑

13

क्रांतिवीर सावरकर के साथ

वीर सावरकर भारतीय क्रांति के इतिहास में एक ऐसे युगपुरुष हैं, जिनके कारण तत्कालीन इतिहास को ही 'दामोदर सावरकर युग' कहा जाता है। उनका नाम सुनकर बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारियों के छक्के छूट जाते थे। उनके अथक प्रयासों से क्रांति को बल मिलता था। कई बार वे कालेपानी की सजा पा चुके थे। सावरकर को सभी क्रांतिकारियों का गुरु माना जाता था।

उन्होंने बड़े ध्यान से आजाद की बात सुनी और बोले, "बस, इतनी सी बात पर तुम इतने परेशान हो रहे हो! यह सब तो इस रास्ते पर लगा रहता है। बलिदान तो क्रांति की सबसे अहम और आवश्यक माँग है। इस रास्ते पर लोग आते हैं, जाते हैं और फिर आते हैं। ऐसी परिस्थिति में इतना परेशान होने जैसी कोई बात नहीं है। इस तरह तुम्हारे जैसे क्रांतिकारी का विचलित होना बिलकुल ठीक नहीं है।"

"आप इसे छोटी सी बात कह रहे हैं! रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक जैसे नेताओं की कमी आखिर कैसे पूरी हो सकती है?" आजाद ने पूछा।

"हाँ, यह तो मैं भी स्वीकार करता हूँ कि सच्चे साथी और मित्र बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। एक सच्चा सहयोगी और एक निष्ठ कार्यकर्ता आसानी से नहीं मिलता; परंतु इस देश-सेवा में जहाँ हमने अपनी जान की बाजी लगा दी है, वहाँ यह सब तो बरदाश्त करना ही पड़ेगा। बड़े-बड़े बलिदान देने पड़ते हैं, मित्र। ऐसे लोग तो बनाए जाते हैं, उत्पन्न नहीं किए जाते। क्या तुम स्वयं बिस्मिल से कम हो! दृढ़ता और लगन से हर कार्य संपन्न किया जा सकता है।"

"लेकिन गुरुजी..." आजाद ने कुछ कहना चाहा।

"नहीं मित्र, अर्थहीन संदेह पुरुष के बल और पौरुष का नाश करता है। अत: अर्थहीन संदेह मत करो। आनेवाले आते हैं, जानेवाले चले जाते हैं; परंतु संसार की गति इससे नहीं रुकती। प्रकृति का तो नियम है गतिशीलता। तुम लाख चाहो, कुछ भी कर लो, आशा रखो अथवा निराशा-प्रकृति को इससे कोई मतलब नहीं। वह तो अपने नियम के मुताबिक गति करेगी ही। इसलिए अगर तुम निराशा के भँवर में फँसकर रुक गए मेरे भाई, तो समय तुमसे बहुत आगे निकल जाएगा। अत: रुको मत, चलते रहो। यही जीवन का शाश्वत नियम है।"

आजाद थोड़ी देर तक सावरकर की बातों पर निस्तब्ध चिंतन-मनन करते रहे, फिर धीरे से बोले, "परंतु अब तो संगठन एक तरह से बिखर गया है। अब तो नए सिरे से संगठन को खड़ा करना होगा और इस कार्य में वर्षों लग जाएँगे।"

"आजाद, यह कार्य कोई खेल नहीं है, जीवन और मृत्यु का संघर्ष है। विश्व का इतिहास इस बात का गवाह है कि स्वतंत्रता के संघर्ष में पीढ़ियों को बलि देनी पड़ी है। दूर क्यों जाते हो, भारत में ही देखो-सन् 1857 से यह संघर्ष जारी है। तब से आज तक कितने ही परम वीर अपना सर्वस्व अर्पित कर चुके हैं। मित्र, क्या पता स्वतंत्रता की देवी के दर्शन हों भी अथवा नहीं। हो सकता है, हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ इस महापर्व का जश्न मनाएँ। परंतु यह सोचकर

क्या हम अपना कर्म छोड़ दें? क्या हम यह सोचकर इस महासंग्राम से बाहर निकल जाएँ कि इस अनिश्चित मार्ग पर बढ़ने से हमारा क्या फायदा होगा? देखो आजाद, भगवान् श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा है---

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

कर्म हमारा अधिकार है, वही बस हमारी सीमाओं में है। अत: हम मात्र कर्म कर सकते हैं। मित्र, फल की कामना तो व्यर्थ है, क्योंकि फल तो हमारे अधिकार में है नहीं और न ही उस पर हमारा कोई वश चलता है। वह तो उस परम सत्ता विधाता के हाथ में है। अत: सिर्फ अपने कर्म की चिंता करो, परिणाम का निर्धारण तुम्हारे अधिकार की चीज नहीं है। वह तो विधाता के हाथ में है, अत: उसे विधाता को ही निश्चित करने दो।"

आजाद सिर झुकाए काफी देर तक सोचते रहे। उनके मस्तिष्क में इस समय एक भीषण झंझावात चल रहा था। विचारों का तीव्र प्रवाह उनके मनो-मस्तिष्क से टकरा रहा था। सावरकर की बातों से उनका खोया आत्मविश्वास पुन: लौट रहा था। काफी समय तक वे उसी प्रकार चिंतन करते रहे और थोड़ी देर बाद सिर उठाकर बोले, "ठीक है गुरुजी, हम एक बार फिर इस संगठन को खड़ा करेंगे। हम अपना..."

"गुरुजी, प्रणाम...।" तभी एक युवक ने आकर सावरकर को प्रणाम किया।

"अरे भगत, तुम! बड़े अच्छे अवसर पर आए तुम कहो, क्या हाल हैं तुम्हारे?"

"आपका आशीर्वाद है गुरुजी, वैसे कहीं आप लोगों की वार्त्ता में बाधा तो नहीं डाली न मैंने?"

"अरे नहीं भगत, बल्कि सच बात तो यह है कि मैं तुम्हें ही याद कर रहा था।" सावरकरजी थोड़ा हँसकर बोले, "भाई, तुम तो अंतर्यामी हो।"

"मेरे योग्य कोई सेवा है?"

हँस पड़े सावरकर--- "सेवा तो तुम कर ही रहे हो, भगत। मातृभूमि की सेवा से बड़ी कोई सेवा नहीं होती। वैसे इनसे मिलो, शायद तुम नाम से परिचित भी होगे।"

भगतसिंह ने दोनों हाथ जोड़कर आजाद को प्रणाम किया--- "आप...?" उनके चेहरे पर एक प्रश्न-सा कौंध आया था।

"ये हैं चंद्रशेखर आजाद। भगत, सुना है इनका नाम तुमने?" सावरकर ने मुसकराते हुए पूछा।

"अरे, आप पंडितजी हैं! बहुत नाम सुना है इनका मैंने, गुरुजी।" भगतसिंह के चेहरे पर एक अनजाना-सा उत्साह खेल रहा था।

"और आजाद, ये हैं भगतसिंह, मातृभूमि को पूर्णत: समर्पित युवा।" सावरकर ने भगतसिंह का परिचय दिया।

"भगत, पंडितजी आजकल बहुत परेशान हैं। बिस्मिल आदि को फाँसी हो जाने के बाद ये कुछ निराश हैं। अत: मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों एक साथ मिलकर काम करो।"

"मुझे बहुत खुशी होगी, गुरुदेव। पंडितजी जैसे महान् क्रांतिकारी के साथ काम करना मेरा सौभाग्य होगा।"

"लेकिन सावरकरजी...!" आजाद कुछ संकुचित-से स्वर में बोले।

"हाँ, पंडितजी, बोलिए। आपको कोई एतराज है भगत के साथ काम करने में?"

"एतराज क्या सावरकरजी, लेकिन दरअसल मैं..."

"आप संकोच में मत पड़िए पंडितजी, निस्कोंच अपनी बात कहिए।" सावरकर ने आजाद की गंभीरता को भाँपते हुए कहा।

"दरअसल सावरकरजी, एक तो मैं भगत की क्षमताओं से परिचित नहीं हूँ, दूसरे मुझे देखने में ही यह अभी-अभी कॉलेज छोड़कर आया हुआ लगता है। पता नहीं यह हमारी कठोर शैली को बरदाश्त भी कर पाएगा या नहीं। नहीं

सावरकरजी, अभी मैं चलता हूँ, प्रयास करता हूँ कि अपना खोया आत्मविश्वास वापस लाकर अपने संगठन को नवजीवन दे सकूँ। आपने अभी-अभी कहा है कि कर्म करना हमारा अधिकार है, परिणाम हमारे अधिकार में नहीं है। मातृभूमि के लिए अब मिट जाना ही हमारा वास्तविक कर्तव्य है, आगे प्रभु की इच्छा।" कहकर वे उठने लगे।
"पंडितजी।" अचानक भगतसिंह ने अपनी हथेली जलते हुए दीपक के ऊपर रख दी--- "आजादी के परवाने जल जाने की हिम्मत लेकर घर से निकलते हैं। आप इस जंगे-आजादी की लड़ाई में भगत को बिखरते देख सकते हैं, पर टूटते नहीं। मेरे सीने में वही आग जल रही है, जो आप और गुरुजी जैसे लाखों-करोड़ों हिंदुस्तानियों के सीनों में जल रही है।"

भगतसिंह की हथेली की त्वचा जलने लगी थी, जिसकी गंध पूरे कमरे में भर गई थी। पर उनके होंठ उसी तरह मुसकरा रहे थे।

"अरे, क्या बेवकूफी है यह!" आजाद ने झपटकर उनके हाथ को दीपक से हटा दिया और सीने से लगा लिया।
"भगत, मेरे भाई, आज मुझे अशफाक और बिस्मिल एक साथ मिल गए।" उस चट्टान की आँखों में भी आँसू आ गए, "इतनी आग तो शायद मेरे सीने में भी नहीं है, भाई! मुझे माफ कर दो, मैंने तुम्हें..."

सावरकर का गंभीर चेहरा भी मुसकरा पड़ा। उन्होंने आगे बढ़कर भगतसिंह और चंद्रशेखर दोनों को अपने सीने से लगा लिया।

"आज तक लोग कहते थे कि सावरकर के सीने में दिल नहीं है, सावरकर कभी भावना में नहीं बहता; परंतु आज तुम दोनों ने मेरी आँखों में भी आँसू ला दिए। जाओ दोस्तो, मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा कि इतिहास तुम दोनों को एक साथ याद करे। देश को तो आजादी मिलनी ही है। जिस देश की माटी में भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे लाल पैदा हुए हों, वह देश कभी गुलाम नहीं रह सकता।"

"गुरुजी...।" चंद्रशेखर का स्वर बेहद भावुक था, "बहुत आभारी हूँ मैं आपका, आज मुझे आपने नई जिंदगी दे दी।"

"अरे भाई, अब रुलाने का इरादा है क्या तुम दोनों का मुझे। वैसे भावुक तो कर ही दिया तुम दोनों ने मुझे। चलो, बैठो।"

तीनों बैठ गए। उसके बाद भविष्य में होनेवाली योजनाओं पर भी विचार-विमर्श होने लगा। सावरकर ने चंद्रशेखर आजाद से कहा, "आजाद, संगठन को नए सिरे से खड़ा करना है और उसके लिए धन की आवश्यकता भी पड़ेगी, अत: आप लोग धन की व्यवस्था भी करें; परंतु इतना ध्यान रखें कि धनाभाव की वजह से किसी भी प्रकार की सुस्ती अथवा लापरवाही सामने नहीं आनी चाहिए।"

"अब तो किसी भी प्रकार की लापरवाही का प्रश्न ही नहीं उठता, सावरकरजी। वैसे भी, भगतसिंह जैसा साथी पाने के बाद तो ऐसा लग रहा है कि जंगे-आजादी की आधी लड़ाई तो मैंने मानो जीत ही ली है।"

"और भगत, तुम ध्यान रखना, आजाद को तुम्हारे किसी बरताव से दुख न पहुँचे। वैसे भी, आजाद तुमसे ज्यादा अनुभवी हैं। अत: तुम जो भी करना, इनकी सलाह लेकर ही करना।" सावरकर ने कहा।

"जो आज्ञा, गुरुजी।" भगतसिंह ने पूरी गंभीरता से कहा और फिर दोनों विदा लेकर चल पड़े।

❑

14

ममता की छाँव

संसार में माँ की ममता की कोई तुलना नहीं है। पुत्र बुरा हो या अच्छा हो, सुपुत्र हो या कुपुत्र हो---माँ की ममता के लिए वह बस पुत्र ही रहता है। गोर्की का प्रसिद्ध उपन्यास है 'माँ'। रूस की क्रांति पर लिखी गई इस पुस्तक में गोर्की ने यह दिखाया है कि अगर पुत्र सन्मार्ग पर चल रहा है तो माँ भी अपने पुत्र के कदम-से-कदम मिलाकर चलती है। उसे अपने दुख का कोई एहसास नहीं होता, उसे अपने जीवन का कोई मोह नहीं होता। वह तो बस अपने पुत्र के लिए ही जीती है और पुत्र के लिए मर जाती है।

भारत में कितनी ही माताएँ ऐसी हैं, जिन्होंने अपने आँचल के सबसे प्यारे फूल को हँसते-हँसते राष्ट्र की बलिवेदी पर चढ़ा दिया। उनकी आँखों में आँसू थे, परंतु होंठों पर मुसकराहट थी। ममता सिसक रही थी, परंतु स्वाभिमान के भाव से सिर ऊँचा था।

चंद्रशेखर आजाद की माता जगरानी देवी भी उन्हीं महान् माताओं में से एक हैं, जिन्होंने अपनी ममता के आँचल में एक ऐसा फूल खिलाया, जिस पर आज भी भारतवर्ष गर्व करता है। जिसकी याद आते ही आज भी हर भारतवासी का चेहरा स्वाभिमान के भाव से ऊँचा उठ जाता है। यह सच है कि वे अपने जीवनकाल में आजादी की बहार नहीं देख सके, परंतु वे कभी गुलाम भी नहीं रहे-और यह अद्वितीय व्यक्तित्व उन्हें मिला था अपनी माँ के दूध से। उस माँ के दूध से, जो हर पल उनके इंतजार में अपनी आँखें बिछाए बैठी रहती थीं।

इन दिनों जगरानी देवी बेटे की राह देखतीं सूखकर मानो काँटा-सी हो गई थीं। उन्हें कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। आसपास की महिलाएँ कई बार आकर कहती थीं, "अम्मा, चलो न हमारे यहाँ, क्या चुपचाप बैठी रहती हो! मन बहल जाएगा।"

तब वे कहतीं, "अरे नहीं, अगर कहीं इसी बीच मेरा शेखर आ गया तो मुझे नहीं पाकर घबरा जाएगा। कितने दिनों बाद तो मेरा लाल घर आता है, अगर वह आया और मैं नहीं मिली तो...?"

और आस-पड़ोस की औरतें थक-हारकर वापस लौट जातीं।

आज भी वे घर के कोने में बैठी यही सब सोच रही थीं। कितने दिन हो गए उसे आए, कितना निर्मोही हो गया है। उसे तो वैसे कभी माँ की चिंता ही नहीं होती। सूरज निकलता है और डूब जाता है, मौसम आता है और चला जाता है; परंतु वह तो जैसे सूरज से भी ज्यादा कठोर हो गया है, जो निकलना ही नहीं जानता। वे उँगली पर गिनकर हिसाब लगा रही थीं-दो साल बीत गए, पूरे दो साल; परंतु देखो न, वह तो इतना निष्ठुर है कि इन दो सालों में एक बार भी उसे अपनी माँ की याद नहीं आई। रात होती है, दिन होता है, लेकिन मुझे तो पता ही नहीं चलता कि कब रात हुई और कब दिन हुआ, कब सुबह हुई और कब शाम हो गई।

एक बस उस निष्ठुर पुत्र के बिना ऐसा लगता है कि जैसे सारा संसार ही कहीं खो गया है। रोज सुबह होती है तो यह आस लगाकर दरवाजे की तरफ ताकती हूँ कि शायद आज वह आ जाए। शाम होती है तो नींद नहीं आती कि कहीं वह आकर दरवाजे पर खड़ा 'माँ-माँ' पुकारता ही न रह जाए। उसके लिए पेड़े लाकर रखती हूँ कि उसे बहुत

पसंद हैं। जब आएगा तो खिलाऊँगी। सब सूखकर खराब हो जाते हैं। फिर लाकर रखती हूँ। मगर वह तो इतना निष्ठुर हो गया है कि आने का नाम भी नहीं लेता। रोज ही खाना बनाकर रखती हूँ-पता नहीं कब कहाँ से भूखा-प्यासा आ जाए, कितनी जल्दी में हो। भला उसे अब रामू हलवाई के पेड़े कहाँ मिल पाते होंगे। पेड़े क्या, पता नहीं खाना भी समय से मिल पाता होगा या नहीं।

अच्छा, इस बार आने दो, कान पकड़कर बैठा दूँगी और कहूँगी कि क्या इसी दिन के लिए मैंने तुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था कि तेरी सूरत भी देखने के लिए तरस जाऊँ? इस बार जरूर पूछूँगी उससे कि क्या तू मेरे सारे प्यार को भूल गया है? परंतु क्या करूँ, जब वह सामने आता है तो मन इतना विचलित हो जाता है कि मैं उससे कुछ कह ही नहीं पाती। बस, उसके मुख को ही देखती रह जाती हूँ।

मगर वह भी क्या करे, उसने भी तो अपने आपको भारत माँ की सेवा में समर्पित कर दिया है। मातृभूमि की सेवा से ही उसे फुरसत नहीं मिल पाती कि वह इस माँ की तरफ ध्यान दे। सुना है कि उसने साथियों के साथ मिलकर सरकारी खजाना लूटा था। उसमें कुछ को तो कालेपानी की सजा हो गई और चार को तो फाँसी। फाँसी! हे भगवान्! हे प्रभु! कितनी कठोर है यह अंग्रेज सरकार। आखिर वह क्यों नहीं समझती कि ये नौजवान अपने किसी स्वार्थ या लाभ के लिए यह सब नहीं करते। इन नौजवानों को अपने सुख की चिंता नहीं होती। ये तो बस इस देश की जनता को गुलामी से छुड़ाने का प्रयास करते हैं। सच ही कहता है चंद्रशेखर कि कोई इनसान किसी इनसान की गुलामी क्यों करे? सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं, फिर कोई मालिक क्यों हो, कोई गुलाम क्यों हो

हे देवता! मेरे लाल की रक्षा करना, इस राक्षसी सरकार का कोई भरोसा नहीं है। मेरा चंद्रशेखर वीर है, परंतु भोला है, सीधा है। उसे इन राक्षसों से बचाना, प्रभु। जब मैं उसे कुछ कहती तो कहता है, ‘माँ, भारत माता सबकी माता है। उसकी आजादी के लिए प्रयत्न करना तो सबका कर्तव्य है।’ ठीक कहता है वह। माँ की रक्षा करना, उसके लिए प्राण देना तो सबका कर्तव्य है। यह क्या कम गर्व की बात है कि लोग तो अपने माँ-बाप के विषय में भी नहीं सोचते, परंतु मेरा लाल तो सबकी माँ के लिए सोचता है। लोग अपने माँ-बाप के लिए तो अपने एक पल के सुख तक को त्याग नहीं पाते, परंतु मेरा लाल, मेरा लाल तो भारत माता के लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहता है। मेरा क्या है, जीवन के चार दिन बचे हैं, कट ही जाएँगे; परंतु संसार तो मेरे पुत्र को मान देगा।

जब वह देश-सेवा की बात करता है, बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें करता है, तब कितनी चमक होती है उसके चेहरे पर। कितनी खुशी झलकती है उसके चेहरे से! चाहे जो भी हो, परंतु मैं अपने लाल की वह खुशी उससे छीन नहीं सकती। मैं उसकी ये बड़ी-बड़ी बातें समझ नहीं पाती, फिर भी दिल को एक खुशी तो मिलती ही है।

उसकी खुशी ही तो मेरी खुशी है। उसे क्या समझाऊँ, कैसे समझाऊँ? वह देश-सेवा करे, जी भरकर करे; परंतु उससे मुझे तो बस इतनी शिकायत है कि वह बस महीने-दो महीने में अपना प्यारा मुख भी दिखा जाया करे। उससे बस इतना ही तो चाहती हूँ मैं।

कितनी चाह थी हम दोनों की कि उसका विवाह करेंगे, एक अच्छी सी बहू घर में आएगी। घर में उसके लाल की रुनझुन गूँजेगी। घर में नाती-पोतों की किलकारियाँ गूँजेंगी। वह साध तो मन की मन में ही रह गई। हमारी सारी इच्छाएँ बस हवा के किसी झोंके-सी विलीन हो गईं।

कभी-कभी रोती थी तो इसके पिताजी मुझे समझाते थे, ‘अरे, क्यों रो रही हो? इसमें रोने की बात क्या है? हमारे घर कोई साधारण लड़का नहीं, शेर पैदा हुआ है। शेर को जन्म दिया है तुमने। सारा देश उसकी प्रशंसा करता है। जब मैं उसकी प्रशंसा सुनता हूँ तो मेरा मन गर्व से झूम उठता है और स्वाभिमान से सिर ऊँचा हो उठता है।’

हालाँकि उन्हें भी कभी-कभी दुख होता था, जरूर होता था। कभी-कभी वे भी उसे याद करके रोते थे। अंदर-ही-

अंदर कहीं घुल भी रहे थे, परंतु कभी भी उन्होंने अपने मन की बात मुझसे नहीं कही और शायद यही कारण था कि वे इतनी जल्दी इस संसार से विदा हो गए।

मैं भी उनके साथ ही चली जाती तो कितना अच्छा होता! न जाने यह दैव क्यों मुझे जीवित रखे हुए हैं। हे ईश्वर! अब तो उठा ले।

"माँ, माँ! अरे, कहाँ हो माँ?" एकाएक आजाद की आवाज सुनकर उनकी विचार-तंद्रा भंग हो गई थी।

"अरे, किसकी आवाज है? यह तो चंद्रशेखर की आवाज लगती है। चंद्रशेखर, मेरा चंद्रशेखर आ गया! मेरा लाल आ गया!" वे रोती हुई भागकर आँगन में आ गईं। आजाद खड़े मुसकरा रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर माँ के पैर छुए। वे रोती हुई चंद्रशेखर से लिपट गईं।

"अरे, अब तक कहाँ था तू? कितना दुबला हो गया! मेरे लाल, क्या तुझे अपनी माँ की याद बिलकुल नहीं आती? मैं तो तुझे याद करते-करते मर गई, मेरे लाल। तुझे मेरी याद क्या बिलकुल नहीं आती?"

"माँ, बेटा कहीं भी रहे, भला वह माँ को कभी भूल सकता है! मुझे तुम्हारी याद किस पल नहीं आती, माँ! तुम्हारे आशीर्वाद की छाया में ही तो हमारी कुशलता है।"

"हाँ-हाँ, चल, बहुत बातें बनाने लगा है तू। अगर तू मुझे याद करता तो क्या इस तरह से वर्षों बीत जाते माँ के पास आए। कभी यह भी नहीं सोचता कि अगर माँ वहाँ अकेले में मर गई तो कौन उसकी चिता को आग लगाएगा!"

"माँ, तू तो सब जानती है।"

"हाँ-हाँ, सब जानती हूँ। चल, पहले हाथ-मुँह धोकर कुछ खा ले, फिर पढ़ाना माँ को, जो भी पढ़ाना हो।"

"हाँ माँ, भूख तो बड़ी जोरों की लग आई है। कुछ खाने को दो।" आजाद माँ के साथ इस वार्त्ता में खुद को सहज नहीं कर पा रहे थे।

"तेरे लिए तो मैं रोज ही पेड़े लेकर रखती हूँ। न जाने तू कब आ जाए। अभी कल ही हलवाई के यहाँ से पेड़े लाकर रखे हैं। ले, तू खा, तब तक तेरे लिए कुछ और बनाती हूँ।"

माँ ने पेड़े लाकर रख दिए और खाना बनाने चली गईं। चंद्रशेखर पेड़े खाने लगे और साथ-ही-साथ सोचने भी लगे कि माँ की ममता का कोई मुकाबला नहीं हो सकता। आखिर क्या सुख दिया मैंने अपने माँ-बाप को, कौन सी हसरत पूरी की। अगर सांसारिक दृष्टि से देखा जाए तो एक तरह से पीड़ा ही पहुँचाई मैंने अपने माता-पिता को; परंतु माँ को तो जैसे इन सब बातों की कोई परवाह नहीं रहती। वह तो बस मुझे देखने के लिए ही व्याकुल रहती है।

शायद यह देश-सेवा का व्रत ही ऐसा है कि जिसने इस रास्ते पर कदम रखा कि एक-न-एक दिन सबकुछ छोड़ना पड़ा। एक गोविंद सिंह ने अपने चार पुत्रों की बलि दे दी। महाराणा प्रताप देश-सेवा का व्रत लेकर जंगलों की खाक छानते रहे। शिवाजी सारी जिंदगी युद्ध लड़ते रहे। इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करके भी वे कभी चैन से नहीं रह सके। तिलक, सावरकर, लाला हरदयाल जैसे देशभक्तों ने न जाने कितने जुल्म सहे। खुदीराम बोस को सत्रह वर्ष में ही फाँसी पर चढ़ जाना पड़ा। यह देश-सेवा का व्रत ही ऐसा है, जिसमें माता-पिता, जिस्म-जान सबकुछ बेगाने हो जाते हैं। यह संसार का सबसे बड़ा धर्म है। भारत माता सभी भारतवासियों की माता है। इसका कण-कण कई तीर्थों के बराबर है। भारत माता की संतानों पर जुल्म हो और हम मौन रहें, भला यह भी कहीं हो सकता है! आजाद अपने विचारों में ही खोए थे कि बाहर से आवाज आई-

"पंडितजी, पंडितजी!"

"अरे, भगतसिंह! आओ भाई, पेड़े खाओ। बाहर से ही क्यों पुकार रहे हो? आ जाओ, अंदर आ जाओ।"

भगतसिंह अंदर आ गए। वे अकेले नहीं थे, उनके साथ राजगुरु भी थे।

अंदर आते ही वे कहने लगे, “पंडितजी, पुलिस को आपके यहाँ होने का संदेह हो गया है, इसलिए चलिए, यहाँ से जल्दी चलना पड़ेगा।”

आजाद हँस पड़े। वे हँसते हुए बोले, “यह पुलिस भी क्या चीज है! मुहब्बत हो तो ऐसी। जैसे लैला मजनूँ की गंध सूँघकर उसके पास चली जाती थी वैसे ही यह पुलिस भी मेरी गंध सूँघकर मेरा पता जान लेती है। खैर, कोई बात नहीं है। आने दो उन्हें, हम भी उनके स्वागत के लिए तैयार बैठे हैं।” उनका हाथ अपनी पिस्तौल की मूँठ पर चला गया।

आजाद की पिस्तौल कभी खाली नहीं रहती थी। उनके दुश्मन भी यह बात जानते थे कि आजाद को इतनी आसानी से अपनी गिरफ्त में नहीं लिया जा सकता।

आजाद का हाथ पिस्तौल पर पड़ते देख राजगुरु को हँसी आ गई। वे हँसते हुए बोले, “पंडितजी, यह बात तो आपके दुश्मनों को भी पता है कि आपकी पिस्तौल का निशाना कभी खाली नहीं जाता। आपकी पिस्तौल का आतंक भी छाया हुआ है और बिना अपनी पूरी तैयारी के वे आपकी पिस्तौल के सामने तो कदापि नहीं आएँगे। वैसे भी, यहाँ माँ हैं। यहाँ हमारी मुठभेड़ ठीक नहीं रहेगी। अत: बेहतर यही होगा कि हम यहाँ से जल्दी-से-जल्दी निकल चलें।”

भगतसिंह ने राजगुरु की बात का अनुमोदन करते हुए कहा, “पंडितजी, राजगुरु ठीक कह रहे हैं। यहाँ मुठभेड़ किसी भी हालत में उचित नहीं रहेगी। बेहतर होगा कि हम यहाँ से यथाशीघ्र निकल चलें।”

“ठीक है, चलो।” आजाद ने कुछ सोचकर कहा, “हाँ, याद रहे, तीन दिन बाद हमें दिल्ली में मिलना है।”

माँ से विदा लेकर आजाद दोनों क्रांतिकारियों के साथ वहाँ से निकलगए।

❑

15

मुठभेड़

दोपहर दो बजे का समय। जेठ का महीना। सूरज अपने पूरे तेज के साथ चमक रहा था। सड़कों से मानो गरम हवा के बवंडर उठ-उठकर अंदर तक झुलसा दे रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो आसमान से आग बरस रही हो। लोग गरमी से व्याकुल होकर अपने-अपने घरों में दुबके बैठे थे।

अचानक पुलिस ने चंद्रशेखर के घर को घेरना शुरू कर दिया। झुंड-के-झुंड पुलिसवालों ने टिड्डी दल की भाँति चंद्रशेखर का घर ही क्या, पूरे इलाके को पुलिस छावनी में बदल दिया। परंतु इतना होने पर भी उनके घर में घुसने की हिम्मत किसी ने नहीं की थी। शेर की माँद में घुसने की हिमाकत आखिर कौन करे? बिल्ली के गले में घंटी बाँधना किसी चूहे के लिए तो आसान नहीं था। घेरा डाले पूरा एक घंटा बीत चुका था, परंतु पुलिस अब तक कुछ नहीं कर पाई थी। सभी खामोशी से अपने वरिष्ठ अधिकारियों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

तीन बजे के आसपास डी.आई.जी. का कड़ा निर्देश आया कि चंद्रशेखर के घर का दरवाजा तोड़कर पुलिस अंदर घुसे। पुलिसवाले विवश थे। पेट की आग कभी-कभी जिंदगी के विषय में सोचने ही नहीं देती। वे नौकरी कर रहे थे और नौकरी में आज्ञा-पालन उनका कर्तव्य भी था एवं विवशता भी। वे जानते थे कि उनकी जान संकट में थी, परंतु वे क्या करते। उन्होंने किवाड़ तोड़ना शुरू कर दिया। अभी उन्होंने किवाड़ पूरी तरह से तोड़ा भी नहीं था कि घर के अंदर से दनादन गोलियाँ चलने लगीं, जिससे कई पुलिसवाले भीषण रूप से घायल होकर पीछे हट गए।

दरअसल हुआ यह था कि उन तीनों के निकल जाने के बाद आजाद के परम मित्र शुक्लाजी उनके घर पहुँच गए। अंदर कोई था नहीं, बस एक आजाद की माँ थीं। उन्होंने कहा, "बेटा, वह तो कहीं चला गया। तुम रुको, मैं खाना बना रही हूँ, खाना खाकर जाना।"

शुक्लाजी ने माँ की बात नहीं टाली और वहीं लेट गए। संयोग से लेटते ही उन्हें नींद आ गई। उनकी यह नींद खुली पुलिस द्वारा मकान का दरवाजा तोड़ने की आवाज सुनकर।

शुक्लाजी और पुलिस के बीच यह संघर्ष घंटों तक चलता रहा। दोनों ओर से भयानक रूप से गोलियाँ चलती रहीं। परंतु आखिर एक आदमी कब तक सैकड़ों पुलिसवालों का मुकाबला करता। शुक्लाजी के कारतूस खत्म हो गए। पिस्तौल लेकर वे बगल की खिड़की से छत पर चढ़े और चाहा कि छत पर से ही दूसरी तरफ कूदकर निकल जाएँ; परंतु दुर्भाग्य से बगलवाले मकान में भी पुलिसवाले मौजूद थे। उन्होंने वहीं से फायरिंग शुरू कर दी। दो गोलियाँ शुक्लाजी की पीठ में जा लगीं और वह वीर जवान वहीं शहीद हो गया।

शुक्लाजी ने अकेले ही पुलिसवालों के छक्के छुड़ा दिए थे। उन्होंने यह साबित कर दिया था कि एक क्रांतिकारी को यूँ पकड़कर गिरफ्तार करना इतना आसान नहीं है। उनके गिर जाने के बाद और भी पुलिसवाले आस-पास की छतों पर चढ़ गए तथा वहीं से कुछ और गोलियाँ शुक्लाजी के मृत शरीर पर बरसाई गईं। जब उन्हें पूरी तरह से यकीन हो गया कि वीर क्रांतिकारी शहीद हो चुका है, तब पुलिसवाले नजदीक पहुँचे।

एक क्रांतिकारी वीर शहीद हो चुका था और घर के अंदर से गोलियाँ भी नहीं चल रही थीं। फिर भी पुलिसवाले

डरते-डरते घर में प्रवेश कर रहे थे। पुलिसवालों ने घर का कोना-कोना छान मारा, परंतु उन्हें आजाद नहीं मिले। वे निराशा से हाथ मलते रह गए। अंत में वे शुक्लाजी का शव और अपने घायल साथियों को लेकर वहाँ से चले गए।

इधर चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह और राजगुरु अपने घर से निकलकर प्रसिद्ध क्रांतिकारी एवं पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के घर पहुँच गए थे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने वहाँ से उन तीनों को एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया।

वहाँ से निकलकर भगतसिंह और राजगुरु दिल्ली चले गए तथा आजाद कुछ काम से कानपुर में ही रुके रह गए।

पुलिस ने कानपुर का कोना-कोना छान मारा। चारों तरफ आजाद की तलाश जोर-शोर से की गई; परंतु आजाद को नहीं मिलना था, सो नहीं मिले। कई लोगों से पूछताछ भी की गई, मुखबिर बैठाए गए; परंतु आजाद की कहीं कोई खबर हाथ नहीं लगी।

माता जगरानी देवी से भी आजाद के विषय में पूछा गया। उन्होंने पूरी तरह सच-सच बता दिया कि आजाद आए जरूर थे, परंतु दो घंटे रुककर चले गए। इससे अधिक वे कुछ नहीं जानतीं। पुलिसवालों ने उनसे ज्यादा पूछताछ नहीं की और वापस लौट गए। सभी जानते थे कि वे आजाद की माँ थीं। एक शेर की माँ, कौन उन्हें ज्यादा तंग करके उस शेर को क्रोधित कर उसके क्रोध को न्योता देता। आखिर सभी को अपनी जान प्यारी थी।

इस घटना के तीन दिन बाद पुलिस को सूचना मिली कि आजाद माल रोड पर कहीं जा रहे थे। पुलिस ने उनका पीछा किया, परंतु इस बार भी वे पुलिस के हाथ नहीं आए और निकल गए।

इस घटना के संबंध में एक रोचक कहानी प्रसिद्ध है। पुलिस को बिलकुल सही सूचना मिली थी। आजाद उस समय माल रोड से होकर रेलवे स्टेशन की ओर जा रहे थे। अचानक उन्हें लगा कि पुलिस की सरगर्मी बढ़-सी रही है। वे वेश बदलने में माहिर थे। चलते-चलते ही वे अपना वेश बदल लिया करते थे। रास्ते में एक सुनसान जगह देखकर उन्होंने अपना वेश एक बूढ़े गरीब किसान का बना लिया। पुलिसवाले आजाद की तलाश करते-करते उनके पास पहुँच गए और उनसे ही पूछा, "बाबा, आपने इधर से एक खूबसूरत नौजवान को जाते हुए देखा है, जिसने धोती-कुरता पहन रखा था; जिसकी मूँछें बड़ी-बड़ी और ऊपर को उठी हुई थीं?"

"न भैया, हमने तो ऐसा नौजवान इधर नहीं देखा। का बात है भैया, कौनो चोर-डाकू है का?" आजाद ने देशी बोली में पुलिसवालों से पूछा।

"अरे बाबा, क्रांतिकारी है वह। अगर तुम बता दोगे उसके बारे में तो सरकार तुम्हें बहुत इनाम देगी।" पुलिसवाले ने कहा।

"अच्छा बबुआ, तब तो हम जरूर देखब त बताएब, कहीं सरकार की कृपा से हमारे दलिद्र कट जाए।" आजाद ने कहा।

"बिलकुल बाबा, अगर देखो तो उसकी खबर अपने पास के किसी पुलिस थाने में देना या किसी पुलिसवाले को जरूर बता देना।"

"अच्छा बबुआ।" कहकर वे आगे बढ़ गए।

बेचारे मुखबिर ने जो हुलिया बताया था वह मिल ही नहीं पाया। वे बेचारे क्या करते। पुलिस को चकमा देकर आजाद बड़े आराम से स्टेशन पहुँच गए और दिल्ली जानेवाली दिल्ली मेल में सवार होकर आसानी से दिल्ली पहुँच गए। पुलिस बेचारी हाथ मलती रह गई।

❑

16

दिल्ली में

दिल्ली में मथुरा रोड पर पुराना किला है। ऐतिहासिक जानकारी के अनुसार यह किला शेरशाह सूरी का बनवाया हुआ है। हालाँकि आजकल यह पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है, तब भी यह बहुत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है और उस समय तो इसकी स्थिति और भी बुरी थी। अब भारत सरकार ने इसके एक भाग में चिड़ियाघर बनवा दिया है। परंतु उस समय तो इसके आसपास किसी तरह की आबादी का कोई नामोनिशान तक नहीं था। इसके आस-पास भी कोई नहीं जाता था। क्रांतिकारियों ने दिल्ली में इसी किले को अपना ठिकाना बनाया।

8 दिसंबर, 1928 को देश के कोने-कोने से क्रांतिकारी आकर इस किले में एकत्र हुए। सर्वप्रथम तो बिस्मिल, अशफाक और अन्य क्रांतिकारी साथियों को, जो अंग्रेजों के जुल्म की चक्की तले पिस गए थे, याद किया गया। फिर सबने मिलकर ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलट देने और देश को आजाद कराने की शपथ ली। चंद्रशेखर आजाद को दल का नेता नियुक्त किया गया। सरकार के अत्याचारों के विरोध में भाषण हुए, तर्क-वितर्क किए गए। इस अवसर पर नए संगठन का नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी गणतांत्रिक सेना' रखा गया तथा भविष्य की नीति और कार्यक्रम निश्चित किए गए। तत्पश्चात् सभी लोग अपने-अपने अड्डों के लिए निकल पड़े।

सरकार चंद्रशेखर आजाद को हर कीमत पर गिरफ्तार करने का प्रयास कर रही थी। पुलिस के सर्वाधिक चालाक एवं होशियार अधिकारियों को इस काम के लिए नियुक्त किया गया था।

एक पुलिस अफसर तसद्दुक हुसैन विशेष रूप से आजाद को गिरफ्तार करने के लिए नियुक्त था। वह आजाद को तलाश करने में अपना दिन-रात एक किए हुए था। हर तरह से वह क्रांतिकारियों के विरुद्ध प्रमाण इकट्ठा कर रहा था।

पहले तो आजाद ने सोचा कि उसे मारकर क्यों न इस समस्या से ही मुक्ति पा ली जाए; परंतु यह विचार उन्हें जँचा नहीं। उन्होंने सोचा कि उसे मार देने पर सरकार को दो-चार और क्रांतिकारियों को फाँसी देने का बहाना मिल जाएगा। अत: उन्होंने उसे मारने का विचार अपने दिल से निकाल दिया। लेकिन वह था कि साए की तरह आजाद के पीछे पड़ा हुआ था। तंग आकर एक दिन अचानक ही आजाद उसके सामने आ गए। उसके सीने पर पिस्तौल रख दी और बोले, "बता, क्या चाहता है तू?"

जान किसे प्यारी नहीं होती? पिस्तौल देखकर उस पुलिसवाले के होश ही उड़ गए। उसने सोचा कि बस, अब जान गई। उसकी आवाज गुम हो गई।

"देखो, अब आइंदा अगर तुमने मेरा पीछा किया तो तुम्हें जान देनी पड़ेगी। यह सोच-समझकर ही अब कोई कदम उठाना।"

उसने दोनों हाथ जोड़ दिए और बोला, "आजाद भाई, मुझसे गलती हो गई। अब ऐसा नहीं होगा। बस, इस बार मेरी जान बख्श दो। मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ।"

आजाद ने उसे एक बार फिर समझाया और जाने का इशारा किया।

वह पुलिस अधिकारी चुपचाप वहाँ से खिसक गया और फिर कभी उसने आजाद के पीछे जाने का प्रयास नहीं किया।

आजाद से पुलिसवाले किस प्रकार भयभीत रहते थे, इसका एक बहुत उपयुक्त और मनोरंजक उदाहरण कानपुर स्टेशन का है।

उस दिन पुलिस को सूचना मिली कि आजाद लखनऊ से कानपुर आने वाले थे। पूरा स्टेशन पुलिस से खचाखच भर गया। ट्रेन कानपुर स्टेशन पर पहुँची। पुलिसवाले सतर्कता से चारों तरफ घूम रहे थे। आजाद ने ट्रेन के अंदर से ही पुलिस की इस सतर्कता को देख लिया था। परंतु जिसने अपनी जिंदगी का सौदा मौत के साथ कर लिया हो, भला वह कहाँ डरता है! आजाद बड़ी निडरता के साथ ट्रेन से बाहर निकले। डिब्बे से बाहर निकलकर वे फाटक पर आकर खड़े हो गए। फिर जैसे ही बाहर जाने को बढ़े कि अचानक एक पुलिसवाला सामने आकर खड़ा हो गया। उन्होंने मुसकराकर अपनी चीते जैसी तेज निगाहों से उसे देखा और धीरे से अपनी पिस्तौल पर हाथ फेरा।

उनकी निगाहों में जो कयामत थी, उसने पुलिसवाले के दिल में हलचल मचा दी। उसके पैर काँपने लगे। हालत उस हिरण की भाँति हो गई, जिसने शेर को अचानक अपने सामने देख लिया हो। घबराहट से उसके प्राण सूख गए। वह अफसर पीछे सरक गया और आजाद आराम से अपनी मूँछों पर ताव देते हुए आगे बढ़ गए। अपनी मस्तानी चाल से चलते हुए वे स्टेशन से बाहर निकल आए और पुलिस चुपचाप देखती रह गई।

आजाद की चाल-ढाल में शेर की-सी मस्ती थी और आँखों में चीते की-सी चमक थी, जो देखनेवालों को जड़ बना देती थी।

❑

17

बहुरूप

रात के आठ बज रहे थे। चारों तरफ चहल-पहल थी। सेठ दिलसुख राय अपने आलीशान बँगले में मसनद लगाए बैठे थे। कमरे को देखकर ही उनकी संपन्नता का पता चलता था। कमरे के एक-एक कोने को भव्य रूप से सजाया गया था। चारों तरफ कीमती एवं खूबसूरत चित्र लगे थे। कमरे में जो सोफा लगा था, वह भी बहुत कीमती था। उनके सामने उनके मुनीमजी बही खाता लिये बैठे थे। आज की कमाई का हिसाब-किताब किया जा रहा था। सेठजी की कमाई रोज की हजारों में थी। अचानक सेठजी का चौकीदार कल्लू दौड़ता हुआ अंदर आया। कल्लू की साँस फूल रही थी।

सेठजी ने उसे देखकर डाँटते हुए कहा, "अरे, क्या बात है? इस तरह दौड़ता हुआ क्यों आ रहा है? पागल हो गया है क्या?"

"सेठजी!" कल्लू कुछ संयत होकर बोला, "वो बाहर कोई आपसे मिलने आए हैं।"

"कौन है इतनी रात को, तूने पूछा नहीं?" सेठजी ने उसे फिर डाँटा।

"सेठजी, वे...वे कोई अंग्रेज साहब लग रहे हैं। आपसे मिलने आए हैं।"

'अंग्रेज साहब।' सेठजी ने आश्चर्य में भरकर मन-ही-मन कहा। "अरे मुनीमजी, जरा देखिए तो इतनी रात को कौन हमसे मिलने आया है!" उन्होंने मुनीम से कहा।

"जी।" सेठजी की बात सुनकर मुनीम बाहर चला गया। बाहर एक साहब अंग्रेजी वेशभूषा में खड़े थे। उनके साथ उनका अर्दली भी था। मुनीम ने हाथ जोड़कर कहा, "साहब, आप कौन हैं? सेठ साहब से क्या काम है?"

उन साहब ने बड़े रोब से कहा, "अरे, टुम कौन हो? हम गवर्नर का पी.ए. है। टुम्हारे सेठ से मिलना माँगटा हाय। हम अभी-अभी लखनऊ से आया हाय। उससे बोलो, जल्दी में हाय।"

मुनीम की हालत पतली हो गई। वह अपनी धोती सँभालता हुआ बड़ी तेजी के साथ अंदर भागा। सेठजी से बोला, "सेठजी, कोई बड़े साहब आए हैं। कहते हैं कि लाट साहब के यहाँ से लखनऊ से आए हैं। आपसे मिलना चाहते हैं।"

लाट साहब का नाम सुनकर तो सेठजी की भी हालत पतली होने लगी। घबराकर वे बाहर की ओर दौड़े। साहब को देखकर उन्होंने झुककर सलाम किया और बोले, "अरे सरकार, आपने क्यों तकलीफ की? आज्ञा दी होती सरकार, मैं खुद ही चला आता। मैं तो वैसे भी सरकार की सेवा के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ। आपको इतनी तकलीफ करने की जरूरत नहीं थी। चलिए सरकार, अंदर चलिए।"

"इसमें कष्ट की क्या बाट हाय, सेठ।" साहब अंदर आते हुए बोले, "सबको सरकार का काम करना होटा हाय। टुम्हारा नाम दिलसुक राय होना माँगटा हाय?" साहब ने पूछा।

"हाँ सरकार, मेरा ही नाम दिलसुख राय है। क्या आज्ञा है?" सेठ जैसे उनके कदमों में लिपटता जा रहा था।

"दिलसुक राय, हम टुम्हारा बही खाटा देखने को माँगटा हाय।"

"क्या हुजूर इंकम टैक्स ऑफिसर हैं?"
"नहीं, हम गवर्नर साब का पी.ए. है। टुमको मालूम, अभी कुछ दिन पहले हमारा जर्मनी से लड़ाई खटम हुआ हाय।"
"जी हुजूर, कौन नहीं जानता है यह बात! उसमें हमारी अंग्रेजी सरकार की जीत हुई।"
"हाँ, टुम ठीक बोलटा हाय। लेकिन उसमें सरकार का सारा पैसा खरच हो गया है। गवर्नमेंट का सारा खजाना खाली हो गया है। अब गवर्नर साब के पास इंग्लैंड से एंपरर का टार आया हाय कि हिंदुस्तान में सेठ-साहूकार लोगों से चंडा लो, खजाना पूरा करो।"
"जी।" सेठजी जरा संकोच से बोले।
"यह चंडा हम इंकम टैक्स के मुताबिक ही वसूल करेगा। अब जल्डी करो, हमको जल्डी ही जाना माँगटा हाय। हम टुम्हारा बही खाटा जल्दी ही देखना माँगटा हाय।"
"हुजूर, बही खाता देखकर क्या करेंगे? बेकार की तकलीफ क्यों करेंगे, सरकार! ऐसे ही बता दें, हमें कितना देना होगा।"
"बाहर हमारा क्लर्क और चपरासी होगा, उनको बुलाओ।"
मुनीम दौड़कर उन दोनों को बुला लाया।
साहब ने क्लर्क से पूछा, "जरा डेखकर बटाओ कि सेठजी को किटना पैसा डेना हाय।"
क्लर्क ने फाइल को उलट-पुलटकर देखा और फिर थोड़ी देर सोचता रहा। हिसाब करता रहा, फिर बोला, "हुजूर, कम-से-कम पच्चीस हजार।"
सेठ के तो मानो होश ही उड़ गए। वह बोला, "सरकार, ये तो बहुत अधिक है।"
"बहुट नहीं है, सेठ। लड़ाई के डिनों में तुमने गवर्नमेंट को रुपया डेकर बहुत मदद किया है। सरकार टुमसे बहुत खुश हाय। सरकार ने निर्णय किया है कि अगले महीने टुमको 'राय बहादुर' का खिटाब डिया जाएगा। ऐसे में टुमको हीला-हवाली कर सरकार को नाराज करना ठीक नहीं हाय।"
'राय बहादुर' के खिताब की बात सुनकर तो सेठजी को मानो कुबेर के खजाने के दर्शन हो गए। उनकी बाँछें खिल गईं। खुश होकर बोले, "अच्छा तो हुजूर, अभी या कल सवेरे?"
"नहीं-नहीं, अभी डो, हमको अभी बहुट सा काम करना हाय।" इसके बाद वे क्लर्क से बोले, "टुम राय बहाडुर साहब का रसीड काट दो। अगले महीने टो इनको खिटाब मिलना ही हाय।"
"जी हुजूर।" क्लर्क ने तुरंत रसीद बना दी।
सेठजी मुनीम की ओर देखकर बोले, "क्यों मुनीमजी, साहब को रुपए देने तो हैं ही, चलो अभी दे देते हैं।"
"हाँ सेठजी, अब साहब को जल्दी है तो दे ही दीजिए। वैसे भी आज या कल से हमें क्या फर्क पड़ेगा, पैसा तो हमें देना ही है।" मुनीम ने सेठ की हाँ में हाँ मिलाई।
सेठ उठा और तिजोरी खोलकर पच्चीस हजार रुपए निकाल लाया। नोटों की गड्डियाँ उसने साहब के हाथों में थमाते हुए कहा, "सरकार, रुपए की बात नहीं है। हम तो आपके सेवक हैं। आप जब भी आवश्यकता समझें हुजूर, आज्ञा दें, बस हुजूर, अपनी बात का खयाल जरूर रखें।"
"हाँ-हाँ, जरूर...जरूर सेठ साहब, राय बहादुर का खिटाब आपको अगले महीने जरूर मिल जाएगा। खुद गवर्नर साब ने कहा हाय।"
क्लर्क ने वे रुपए बैग में भरे और बैग चपरासी को थमा दिया। रुपए लेकर वे तीनों वहाँ से निकल गए। सेठ खुद

उन तीनों को उनकी कार तक पहुँचाने आया।

सेठ लौटकर फिर मसनद पर अकड़कर बैठ गए। आज उन्हें एक दैवी खुशी की अनुभूति हो रही थी। उनके नाम के साथ अब 'राय बहादुर' और जुड़ने जा रहा था। वे जैसे बैठे-बैठे ख्वाब देख रहे थे। लोग बधाई दे रहे थे। वे बाजार में गुजर रहे हैं और लोग झुककर उन्हें 'राय बहादुर' कहकर सम्मान दे रहे हैं। खुशी जैसे सँभाले नहीं सँभल रही थी।

मुनीम को भी सेठ की खुशी का एहसास था। वह जानता था कि सेठजी की यह वर्षों की साध थी कि उन्हें 'राय बहादुर' का खिताब मिले। वे मुनीम से बात करते हुए कहते थे, "मुनीमजी, मैंने सरकार की इतनी सेवा की, कभी किसी अंग्रेज-विरोधी कार्यक्रम को सुना तक नहीं। कोई अगर कांग्रेस के नाम पर यहाँ माँगने आ गया तो मैंने उसे धक्के मारकर निकलवा दिया; परंतु सरकार ने कभी मेरी ओर ध्यान नहीं दिया। मुझसे छोटी-छोटी हैसियत के लोग 'राय बहादुर' का खिताब पाकर इतराते रहते हैं और मैं उनके सामने शर्मिंदा हो जाता हूँ।"

अब मुनीम सीना चौड़ा करते हुए बोले, "सेठजी, मैंने कहा था न कि एक-न-एक दिन सरकार को आपकी वफादारी की कीमत समझ में आएगी और वह दिन आज आ ही गया।"

"सेठजी, अब तो सेठ छगनलाल भी जलकर कबाब हो जाएँगे। अरे, तीन पुश्तों से कोशिश करते-करते मरे जा रहे थे और राय साहबी तक नसीब नहीं हुई और यहाँ आप, आपको तो हुजूर, राय बहादुरी मिलने जा रही है। सच है सेठजी, ईश्वर की नजर जब सच्चे लोगों की तरफ घूमती है तो इसी तरह उसके दर पर इनसाफ होता है।"

सेठजी अब इतना बड़ा ओहदा पाकर अपने आपको घमंडी नहीं दरशाना चाहते थे, सो बड़ी विनम्रता से बोले, "मुनीमजी, मैं क्या चीज हूँ, सब उस ईश्वर की कृपा और बुजुर्गों का आशीर्वाद है। एक बात बताऊँ मुनीमजी, मेरे पिताजी जब तक जिंदा थे, माँ को सख्त ताकीद किया करते थे कि चाहे घर का कोई शख्स भूखा रह जाए, परंतु दरवाजे पर आया कोई गरीब किसी भी हाल में भूखा नहीं जाना चाहिए। उनका पुण्य ही आज फल रहा है।"

"आप भी तो कम दान नहीं करते, सेठजी। मेरे देखे में तो आज तक आपके दरवाजे से भी कोई खाली नहीं गया है।" मुनीमजी ने सेठजी की ठकुर-सुहाती की।

"अरे मुनीमजी, अब जो कर सकता हूँ, वह तो कर ही रहा हूँ। परंतु अब मुझमें वो बात कहाँ। अब..."

"पुलिस, पुलिस...!" अचानक बाहर आवाज सुनाई पड़ी।

"अरे, क्या बात है मुनीमजी! जरा देखिए तो, अचानक क्या बात हो गई?"

तब तक चौकीदार अंदर आ गया-"सरकार, बाहर पुलिस...।"

तब तक उसके पीछे-पीछे पुलिस के आठ-दस सिपाही भी अंदर आ गए।

"क्या बात है साहब, इतनी रात में किसे तलाश रहे हैं?" सेठजी ने सोफे से खड़े होते हुए पूछा।

"सेठजी, अभी कोई यहाँ आया था क्या?" इंस्पेक्टर ने सेठजी के सवाल का जवाब देने की बजाय सवाल उछाला।

"हाँ-हाँ, अभी थोड़ी देर पहले लाट साहब के पी.ए. साहब यहाँ से गए हैं सेठजी से चंदे के पच्चीस हजार रुपए लेकर। मगर बात क्या है? क्या हो गया?"

"सेठजी, पहले आप बताइए, उनका हुलिया कैसा था?"

"वे गोरे रंग के, लंबे कद के, थोड़े से दुबले-पतले से थे। पी.ए. साहब एक बड़ा सा टोप लगाए थे।"

"उनके साथ क्या कुछ और लोग भी थे?"

"जी साहब, दो लोग और थे-एक उनका क्लर्क तथा एक चपरासी। चपरासी की मूँछें बड़ी-बड़ी थीं। बड़ी कड़क थीं। साहब, देख के ही डर लगता था।"

"हूँ।" इंस्पेक्टर ने एक लंबी साँस खींची, "वे चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह थे, सेठजी। वे किधर गए हैं?"
"सरकार, माल रोड की तरफ गए हैं। पर सरकार, ये लोग हैं कौन? इन लोगों ने मुझसे पच्चीस हजार रुपए चंदा भी ले लिया है।"
"सेठजी, ये लोग चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह थे। सरकार के पक्के दुश्मन हैं ये लोग मशहूर क्रांतिकारी हैं। चारों तरफ इनके नाम की मुनादी फिरी है। इनकी गिरफ्तारी पर इनाम है।" इंस्पेक्टर ने बताया।
"हाय राम! मैं बरबाद हो गया, मैं लुट गया। मुनीमजी, यह तो बहुत बुरा हो गया। मेरी मेहनत को धूल में मिला दिया इन कमबख्तों ने।" सेठ रोने लगे।
"हाँ सेठजी, धोखा तो बहुत बड़ा हुआ हमारे साथ। हमें क्या पता था कि हम सरकार के दुश्मनों को अपने खून-पसीने की कमाई सौंप रहे हैं।"

पुलिस इंस्पेक्टर तुरंत अपने सिपाहियों को लेकर कार का पीछा करने उसी दिशा में निकल गए जिधर आजाद व भगतसिंह गए थे।

परंतु पंछी तो उड़ चुका था। साँप निकल गया था, अब भला लकीर पीटने से क्या फायदा था। पुलिस भूसे में गिरी सुई की तरह उन वीर क्रांतिकारियों की तलाश करती रही, लेकिन उन्हें नहीं मिलना था, सो नहीं मिले।

लोग इसे ठगी समझेंगे, परंतु क्या वास्तव में यह ठगी थी? नहीं, यह दुसाहस था। मातृभूमि के सम्मान पर अपनी जान गँवा देनेवाले वीरों का दुसाहस था यह। क्रांति का यह कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं था। किसी एक व्यक्ति के व्यक्तिगत सुख-दुख का प्रश्न नहीं था। यह तो संपूर्ण भारतीयों के लिए उनकी अस्मिता और सम्मान की भावना का प्रश्न था। अत: ऐसे में वे देश-हित के लिए किसी से थोड़ा गलत तरीके से धन ले भी लेते तो वह गलत नहीं था। उनका साध्य पवित्र था, साधन की पवित्रता और अपवित्रता का कोई अर्थ नहीं था। वे महावीर अपनी आवश्यकताओं एवं योजनाओं को इसी प्रकार पूरा किया करते थे।

सेठ दिलसुख राय के यहाँ इस सुंदर नाटक में भगतसिंह ने गवर्नर के पी.ए. की, राजगुरु ने क्लर्क की तथा चंद्रशेखर आजाद ने चपरासी की भूमिका निभाई थी।

❑

18

पटरी पर बम

चंद्रशेखर आजाद की कार्यशैली, उनकी हिम्मत अपने आप में एक मिसाल थी। आजाद के दिल में न तो कोई भय था और न ही वे अपनी योजनाएँ बनाते समय किसी भी प्रकार की दुविधा रखते थे।

इस बार आजाद बहुत व्यस्त थे। एक बहुत महत्त्वपूर्ण योजना का निर्धारण होना था। सभी क्रांतिकारी जुट रहे थे। उनके घर से बहुत दूर कानपुर में ही एक छोटे से मकान में आजाद, भगतसिंह और विजय कुमार साथ-साथ रह रहे थे। बंगाल से बटुकेश्वर दत्त भी आ गए थे। आज उन्हें अपनी योजना को मूर्त रूप देना था। इसी संदर्भ में यह सम्मेलन आयोजित हुआ था, जिसके लिए दूर-दूर से क्रांतिकारी आए थे। इस सम्मेलन का उद्देश्य बहुत खास था।

बटुकेश्वर दत्त जब आए तो उनका मुँह सूखा हुआ था। विजय कुमार को लगा कि वे काफी दूर से आ रहे हैं, इसलिए भूख के कारण उनका चेहरा उतर गया है। अत: वे दौड़कर दो डबल रोटी ले आए। सब लोग चाय पीने बैठे तो डबल रोटी देखकर आजाद ने पूछा, "अरे, यह डबल रोटी कहाँ से आ गई, भाई?"

"मैं ले आया, आजादजी। दरअसल बटुकेश्वर भैया इतनी दूर से आए हैं, अत: इनके स्वागत में चाय के साथ कुछ नाश्ता तो होना चाहिए न।"

"नाश्ता।" आजाद ने थोड़े आक्रोश से कहा, "विजय, हम लोग इस जिंदगी को दाँव पर लगाकर खेलते हैं। हमारा स्वागत चाय-नाश्ते से नहीं, गोलियों से होता है। स्वाद बनाने अथवा स्वागत करने के लिए हमारे पास पैसा कहाँ होता है। एक-एक पैसा जोड़कर तो हम किसी तरह शस्त्र एवं कारतूस खरीदते हैं। मैं नहीं खा सकता यह डबल रोटी।"

विजय कुमार ने आजाद से क्षमा माँगते हुए कहा, "आजाद भैया, अब तो गलती हो गई। डबल रोटी अब वापस तो नहीं की जा सकती है न! अब इस बार खा लीजिए, आइंदा फिर कभी इस प्रकार की भूल नहीं होगी।"

सबके बहुत कहने पर आजाद ने डबल रोटी का एक टुकड़ा मुँह में रखा।

इसके बाद बैठक की कार्रवाई शुरू हुई। आजाद ने कहा, "आज से ठीक दो दिन बाद वायसराय लॉर्ड इरविन दिल्ली से बाहर जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि उनका यह प्रस्थान प्रस्थान ही रहे। इस संदर्भ में मैंने एक योजना तैयार की है, जो आप सभी के सामने रख रहा हूँ। अगर आपको यह पसंद आती है तो हम इस पर आज ही कार्रवाई शुरू कर देंगे।"

फिर उन्होंने अपनी तैयार योजना सबके सामने रखी। योजना सभी को बहुत पसंद आई। सभी ने बड़ी प्रसन्नता से उसका समर्थन किया। सबकी सहमति के बाद योजना को कार्यरूप देने के लिए विचार-विमर्श करना शुरू कर दिया।

अभी वह मीटिंग समाप्त ही हुई थी कि पुलिस का एक सिपाही हाथ में छोटी सी संदूकची लिये वहाँ पहुँचा। आजाद को देखकर उसने सलाम किया और वह संदूक देते हुए बोला, "मुझे सी.आई.डी. के इंस्पेक्टर साहब ने आपके पास भेजा है। इस संदूक में कारतूस हैं। साथ ही उन्होंने यह भी कहलवाया है कि आप लोग शाम तक इस

मकान को अवश्य छोड़ दें।"

आजाद ने संदूक अपने हाथ में ले लिया और उसे खोलकर देखते हुए बोले, "आप हमारी ओर से इंस्पेक्टर साहब को बहुत-बहुत धन्यवाद दीजिएगा। साथ ही उनसे यह भी कह दीजिएगा कि जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही होगा। वे पूर्णतया निश्चिंत रहें, हम शाम तक यह मकान अवश्य छोड़ देंगे। शाम को यह मकान उन्हें खाली ही मिलेगा।"

ऐसा ही था आजाद का व्यक्तित्व। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कई बार पुलिसवाले भी उनकी मदद कर देते थे। बड़े-बड़े धनाढ्य लोग उनके प्रति सहानुभूति रखते थे और आवश्यकता पड़ने पर उनकी मदद भी करते थे। वे जानते थे कि ये नौजवान अपने निजी स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र-प्रेम से भरकर ही कठिन डगर पर चल रहे थे। इनकी मदद करना देश-सेवा करने जैसा है।

दो दिन बाद, दिल्ली-मथुरा रेलवे लाइन पर सौ-सौ गज के फासले पर पटरी के दोनों ओर सिपाही खड़े थे। आज वायसराय को यहाँ से गुजरना था, इसलिए सभी सावधान थे। सभी जानते थे कि क्रांतिकारियों का कोई भरोसा नहीं है। वे कुछ भी कर सकते हैं।

वायसराय के लिए एक विशेष गाड़ी आती थी। उस गाड़ी के आगे तक इस लाइन की सभी ट्रेनें मथुरा में रोक दी गई थीं। दिल्ली से वह विशेष ट्रेन धड़धड़ाती हुई चल दी। फरीदाबाद से गाड़ी गुजर रही थी कि एक जोर का धमाका हुआ। उस विशेष गाड़ी के डिब्बे और सौ गज लंबी रेल की पटरी हवा में बिखर गए। परंतु वायसराय की बोगी बाल-बाल बच गई।

यह धमाका आजाद और उनके क्रांतिकारी साथियों का कारनामा था, जिसकी योजना कानपुर में बनी थी। पुलिस की आँखों में धूल झोंककर एक टाइम बम रेल की पटरी पर रख दिया गया था।

इस घटना के बाद वायसराय का कहीं भी आना-जाना बंद हो गया। ब्रिटिश सरकार अब पहले से ज्यादा चौकन्नी हो गई थी। हर अंग्रेज अफसर भयग्रस्त था। उन्हें चारों तरफ अपनी मौत दिखाई देती थी। सरकार ने फिर क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू कर दी। पुलिस के अफसर पूरी तरह सचेत एवं सक्रिय हो गए। अंग्रेजों की दमन नीति प्रचंड हो गई। क्रांतिकारियों के संदेह में बेगुनाह लोगों को भी पकड़कर जेल में ठूँस दिया गया।

❑

19

सांडर्स को दंड

ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के साथ कभी वफादारी नहीं की। धोखा देना उसका चरित्र था और जब भी ऐसा अवसर आता, सरकार अपना यह चरित्र प्रमाणित करने में पीछे नहीं रहती। सन् 1914 से 1919 तक चले प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेज सरकार ने भारतीयों से इस वादे के साथ मदद माँगी कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद वह भारत को पूर्णत: आजाद कर देगी। हालाँकि भारतीय नेता ब्रिटिश सरकार के इस चरित्र से पूर्णत: परिचित थे, परंतु फिर भी वे उसके फैलाए हुए जाल में फँस गए और अंग्रेजी दस्ते में लाखों भारतीय नौजवानों को भरती कराया। गांधीजी के इस उपकार का बदला ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'कैसरे हिंद' पुरस्कार देकर चुकाया, जो उस समय राजभक्ति का सबसे बड़ा पुरस्कार था। परंतु आजादी देने के नाम पर वह अपना पुराना चरित्र दिखा गई।

नेताओं द्वारा बार-बार उन वादों की याद दिलाने पर भारतीयों के सामने एक और छल परोसने के लिए सरकार ने यह घोषणा की कि जल्दी ही एक कमीशन भारत भेजा जाएगा। उस कमीशन में आधे लोग भारतीय होंगे तथा आधे अंग्रेज। वही कमीशन इस बात का फैसला करेगा कि भारतीयों को आजादी किस प्रकार और कब दी जाए। हालाँकि यह भी ब्रिटिश सरकार का एक और छल ही था, क्योंकि वादे के मुताबिक कब और किस प्रकार की बजाय उसे सीधे आजादी के लिए ही कमीशन की घोषणा करनी थी; परंतु भारतीय नेताओं ने ज्यादा एतराज नहीं किया। उनका खयाल था कि आवश्यकता यह है कि प्रक्रिया शुरू हो, बात आगे उठे।

नेताओं के दबाव एवं भारतीय जनता की आजादी के प्रति दीवानगी को देखकर अंतत: यह आयोग भारत आया। परंतु यहाँ भी अपनी पुरानी आदत के मुताबिक अंग्रेजों ने अपना खेल दिखा ही दिया था।

भारत आया साइमन कमीशन सात सदस्यीय कमीशन था, परंतु उनमें भारतीय कोई भी नहीं था। सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारतीय जनता समझ गई कि यह अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल है। इस तरह वह भारत की आजादी को एक बार और बंधक बनाना चाहती है। अत: भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय का विरोध करना तय कर लिया। भारतीय नेताओं ने यह निश्चय किया कि वे साइमन को भारत में नहीं रुकने देंगे। उसे वापस जाना होगा।

इस कमीशन की अध्यक्षता साइमन नाम के एक अंग्रेज कर रहे थे। अत: इस कमीशन का नाम 'साइमन कमीशन' रखा गया। आज भी इतिहास में इसे 'साइमन कमीशन' के नाम से ही जाना जाता है।

भारतीय नेताओं ने सरकार से स्पष्ट रूप से कह दिया कि अंग्रेज कभी भी भारत के पक्ष में निर्णय नहीं दे सकते, अत: सरकार को अपना यह निर्णय वापस लेना चाहिए। कमीशन के इंग्लैंड से चलते ही भारत में उसका विरोध होना शुरू हो गया। जगह-जगह कमीशन के विरोध में काले झंडे लगाए गए। स्थान-स्थान पर सभा करके 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारे लगाए जाने लगे। साइमन जहाँ भी गया वहाँ लोगों ने काले झंडे दिखाकर उसका विरोध किया। सरकार को हर तरफ से जनता के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ रहा था।

कमीशन कई जगहों पर घूमा; परंतु हर नगर, हर शहर-जहाँ भी वह गया, उसे प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। पंजाब की राजधानी लाहौर में भी कमीशन पहुँचने वाला था। अंग्रेज सरकार के कुछ पिट्ठ। एवं अंग्रेजी

नौकरशाह साइमन का स्वागत करने के लिए पलक-पाँवड़े बिछाए इंतजार कर रहे थे।

साथ ही भारतीय देशभक्तों की तैयारी भी मुकम्मल थी। साइमन का विरोध करने के लिए राष्ट्रभक्तों ने भी खूब तैयारी की थी। सैकड़ों काले झंडे बनवाए गए।

दूसरे दिन जब साइमन कमीशन रेलवे स्टेशन पर उतरने ही वाला था, तब हजारों भारतीय अपने हाथों में काले झंडे लिये तेजी से स्टेशन की तरफ बढ़ रहे थे। यह भीड़ जब नारे लगाती तो ऐसा लगता मानो संपूर्ण स्टेशन थर्रा उठा हो। 'साइमन वापस जाओ! साइमन कमीशन एक धोखा है!' इन नारों से लाहौर का आकाश गूँज उठा। इस भारी जुलूस का नेतृत्व पंजाब केसरी लाला लाजपतराय कर रहे थे।

जुलूस स्टेशन की ओर बढ़ने लगा। इस अपार भीड़ के सामने नौकरशाही के छक्के छूटने लगे। चारों तरफ एक ही नारा गूँज रहा था-'साइमन कमीशन वापस जाओ', 'जनता का शोषण समाप्त हो'। ऐसा लग रहा था जैसे समंदर की कोई विशाल लहर उठ रही है, जो अपने प्रवाह में ब्रिटिश सरकार को बहाकर ले जाना चाहती थी।

बड़ी संख्या में पुलिसवाले आकर उस भीड़ को रोकने लगे। पुलिस भीड़ को तितर-बितर हो जाने की चेतावनी दे रही थी। परंतु आजादी के मतवाले पुलिस की बात कहाँ सुन रहे थे। पुलिस के बार-बार कहने पर भी वह जुलूस आगे ही बढ़ता गया। पुलिस का रोब उस भीड़ पर नहीं चल पा रहा था।

आखिरकार पुलिस अत्याचारी शासन की निर्मम करतूत पर उतर गई। निहत्थे एवं शांतिप्रिय ढंग से अत्याचार एवं गुलामी के विरुद्ध प्रदर्शन कर रहे लोगों पर पुलिस ने निर्ममता से लाठी भाँजना शुरू कर दिया। मानो लाठियों की भयंकर बरसात होने लगी। हजारों के सिर फूटे, हाथ-पैरों में चोटें आईं। सैकड़ों लोग होश गँवाकर गिर पड़े। लोकप्रिय नेता लाला लाजपतराय बुरी तरह से घायल हो गए। उनके शरीर पर बहुत गहरी चोटें आई थीं। कुछ दिन अस्पताल में भरती रहने के बाद आखिरकार 17 नवंबर 1928 को वह लोकप्रिय नायक आजादी का दीवाना 'पंजाब केसरी' इस संसार को छोड़कर चला गया।

लाला लाजपतराय की मृत्यु ने मानो क्रांति की इस अग्नि में घी का काम किया। चारों तरफ क्रांति की आग और तेजी से भड़क गई। क्रांतिकारियों के दिल में भी प्रतिहिंसा की आग सुलगने लगी। आजाद, भगतसिंह, राजगुरु और जयगोपाल आदि ने मिलकर अपने प्रिय नेता की मृत्यु का बदला लेने की ठान ली।

क्रांतिकारी लालाजी की मौत का बदला लेने की योजना बनाने लगे। वैसे तो इस दल का प्रत्येक कार्य केंद्रीय समिति के सदस्यों के बहुमत से लिये गए निर्णय के अनुसार पूरा किया जाता था, परंतु उस समय लाहौर में दल के सभी सदस्य मौजूद नहीं थे। फिर भी, लाहौर में रह रहे दल के सभी सदस्य इस योजना से पूरी तरह से सहमत थे। निर्णय तुरंत लिया जाना था और लाहौर के बाहर के सदस्यों को इतनी जल्दी बुलाना संभव नहीं था। अंतत: दिसंबर 1928 के पहले सप्ताह में लाहौर के मजंग मोहल्ले के एक मकान में समिति के सदस्यों की एक बैठक हुई और उसमें बदला लेने का निश्चय किया गया।

इस बैठक में तय किया गया कि लाहौर के पुलिस अधीक्षक स्कॉट को मार दिया जाए, क्योंकि लाठी-चार्ज का हुक्म उसी ने दिया था। इस योजना को अंतिम कार्यरूप देने के लिए चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, शिवराम राजगुरु तथा जयगोपाल इन चार युवकों का एक दल नियुक्त किया गया। कुछ दिन पहले से जयगोपाल को स्कॉट के आने-जाने का रास्ता देखने तथा उसकी गतिविधियों का निरीक्षण करने के लिए लगा दिया गया। जयगोपाल रात-दिन इसी कार्य में लग गया।

कार्रवाई के लिए 15 दिसंबर, 1928 का दिन निश्चित किया गया था। उस दिन मौसम में धुँधलापन कुछ ज्यादा था। जयगोपाल को चंद्रशेखर ने पुलिस मुख्यालय पर कुछ देर पहले ही भेज दिया। वह साइकिल लेकर पहुँच गया।

उसने अपनी साइकिल मुख्यालय गेट के सामने इस प्रकार लगा दी मानो उसमें कोई विशेष खराबी आ गई हो, वह चल नहीं पा रही हो-और झुककर साइकिल को देखने लगा। स्कॉट का वध राजगुरु तथा भगतसिंह द्वारा किया जाना तय था। आजाद पास ही डी.ए.वी. कॉलेज के सामने की दीवार की आड़ में छिपे थे। उनकी यह जिम्मेदारी थी कि जब स्कॉट को मारकर भगतसिंह एवं राजगुरु भागेंगे तब वे उन्हें कवर करने और उनका पीछा करने वालों को रोकेंगे। आजाद को इस काम में महारत हासिल थी। सड़क पर साइकिल खड़ी करने का उद्देश्य यह था कि अगर निशाना चूक जाए तो साइकिल पर बैठकर स्कॉट का पीछा किया जा सके। दूसरे, जयगोपाल स्कॉट को अच्छी तरह पहचानता था। पिछले कई दिनों से वह इसी कार्य में लगा था।

निश्चित समय पर सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर पहुँच गए। यहाँ जयगोपाल से एक गलती हो गई। दरअसल वह सांडर्स को ही स्कॉट समझ बैठा था। जैसे ही सांडर्स मोटरसाइकिल पर बैठकर कार्यालय के गेट पर आया, जयगोपाल ने संकेत किया और राजगुरु ने तुरंत गोली उसकी गरदन पर दाग दी। सांडर्स मोटरसाइकिल समेत वहीं गिर पड़ा। इसके बाद भगतसिंह ने चार-पाँच गोलियाँ और उसके सिर में दाग दीं, ताकि काम अधूरा न रह जाए।

काम खत्म करके दोनों क्रांतिकारी एक साथ डी.ए.वी. कॉलेज के अहाते की तरफ बढ़े। इस पर कार्यालय के बरामदे में खड़ा एक सिपाही बड़ी जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर ट्रैफिक इंस्पेक्टर फर्न तथा अन्य दो सिपाही उनका पीछा करने के लिए भागे। भगतसिंह ने फर्न पर गोली चला दी। उसने अपने को झुककर बचा तो लिया, पर इस प्रयास में वह गिर पड़ा। उसे गिरते देखकर दूसरे सिपाही ठिठके, परंतु उन्होंने पीछा करना नहीं छोड़ा। उन्हें पीछे आते देखकर आजाद ने अपना माउजर निकाल लिया और उन्हें भाग जाने की चेतावनी दी। उसमें एक सिपाही था चानन सिंह। उसने सोचा कि वह शायद क्रांतिकारियों का पीछा करके उन्हें पकड़ लेगा, अत: वह कुछ अधिक वीरता दिखाने पर उतारू हो गया और पीछा करना नहीं छोड़ा। उसकी धृष्टता देखकर आजाद ने गोली चला दी। आजाद का निशाना चूकने का तो सवाल ही नहीं उठता था, सिपाही फौरन यमपुरी पहुँच गया।

चानन सिंह के मरने के बाद फिर उनका पीछा करने की हिम्मत किसी ने नहीं की।

चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह तथा राजगुरु तीनों डी.ए.वी. कॉलेज के छात्रावास में पहुँचे। तीनों ने कार्य पूरा होने की खुशी में एक-दूसरे को बधाई दी और फिर आजाद एवं राजगुरु एक साइकिल पर बैठकर वहाँ से निकल गए। भगतसिंह भी कुछ देर छात्रावास में रुककर फिर वहाँ से अपने एक साथी का कोट-पैंट और हैट तथा कुछ पैसे लेकर चले गए।

सांडर्स का वध अनजाने में हुआ था। दरअसल उन तीनों की इच्छा थी स्कॉट को मारने की। परंतु यहाँ मतलब यह नहीं है कि वे मारना क्यों चाहते थे। दरअसल जिस हृदय में आत्मसम्मान की भावना होती है, जो लोग अपनी मातृभूमि पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं, वे अपनी मातृभूमि तथा मातृभूमि के लिए संघर्ष करनेवाले किसी भी व्यक्ति का अपमान बरदाश्त नहीं कर सकते। पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की हत्या मातृभूमि का घोर अपमान था। अपने देश में ही शांतिपूर्ण ढंग से एक काले शासन का विरोध कर रहे उस देशभक्त को जिस तरह लाठियों से पीट-पीटकर मारा गया था, वह निश्चित रूप से इतना अपमानजनक था कि उसका बदला लेना किसी भी राष्ट्र-भक्त के लिए पावन कर्तव्य के समान था।

❑

20

लाहौर से फरार

सांडर्स की हत्या हो चुकी थी। अब सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था लाहौर से फरार होना। पुलिस तो मानो पागल-सी हो गई थी। सारा नगर पुलिस छावनी में तब्दील हो गया था। सड़कें, गलियाँ, कूचे---जहाँ देखो, पुलिस-ही-पुलिस नजर आती थी। पुलिस का एकमात्र उद्देश्य था सांडर्स को गोली मारनेवालों की गिरफ्तारी---किसी भी कीमत पर, किसी भी स्थिति में।

सांडर्स के बँगले के पास ही डी.ए.वी. कॉलेज था। पुलिस को यह शक था कि उसकी हत्या के बाद क्रांतिकारी इसी कॉलेज में कहीं छुपे बैठे थे। इस शक में उन्होंने कॉलेज का कोना-कोना छान मारा। पूरे कॉलेज का कोई भी कोना ऐसा नहीं बचा था, जहाँ पुलिस नहीं पहुँची हो; परंतु सब ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गए। क्रांतिकारी तो दूर, उनकी गंध तक नहीं मिली।

इधर क्रांतिकारियों की सबसे बड़ी समस्या थी लाहौर से फरारी; पर आखिर कैसे

चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि एक कोठरी में बैठे इसी बात पर विचार-विमर्श कर रहे थे। सबकी चिंता यही थी कि किसी तरह लाहौर से बाहर निकला जाए। आजाद ने कहा, "मेरी चिंता नहीं है। मैं तो किसी-न-किसी तरह निकल ही जाऊँगा। सबसे बड़ी समस्या है भगतसिंह एवं राजगुरु के लिए। इनको छिपकर भागने का अनुभव नहीं है। वैसे भी पुलिस को इन्हीं की तलाश ज्यादा होगी, क्योंकि ज्यादा लोगों ने इन्हीं को देखा है।

भगतसिंह ने चंद्रशेखर को चिंतित और परेशान देखा तो बोले, "आजादजी, आप व्यर्थ परेशान हैं। अगर किस्मत में गिरफ्तार होना ही लिखा होगा तो हो जाएँगे। एक-न-एक दिन तो मातृभूमि के चरणों में यह शीश चढ़ाना ही है, आज ही चढ़ जाए तो क्या हो जाएगा!"

भगतसिंह की बात पर चंद्रशेखर के होंठों पर मुसकान आ गई--- "भगत, मैं जानता हूँ भाई, कि तुम मरने से नहीं डरते। कोई क्रांतिकारी मरने से नहीं डरता; परंतु हमारी जान इतनी सस्ती भी तो नहीं है कि उसे इतनी आसानी से अंग्रेजों के हवाले कर दिया जाए। प्रयास तो करना ही होगा मित्र, आगे अंजाम जो भी हो। मेरे मन में एक योजना है। अगर तुम लोगों को वह पसंद आ जाए तो कुछ उम्मीद बन सकती है।"

"आजाद भैया, आप योजना बताइए, हम जरूर उस पर अमल करेंगे।" राजगुरु ने कहा।

आजाद बताने लगे। वह योजना सभी को अच्छी लगी। राजगुरु ने कहा, "अगर दुर्गा भाभी मान जाएँ तो इस योजना से हम अच्छी तरह लाहौर छोड़ सकते हैं।"

"भाभी से हम बात कर चुके हैं। वे तो भगत को अपने भाई जैसा प्रेम करती हैं। उन्हें इसकी रक्षा के लिए अपने प्राण खतरे में डालने में कोई एतराज नहीं है। अब भगत, तुम बोलो, तुम क्या कहते हो?"

"कर तो लूँगा यह सब, लेकिन भाभी के साथ मुझे यह कुछ रुचिकर नहीं लग रहा है। कोई और रास्ता निकालो।"

"तुम क्या सोचते हो भगत, हम इतना बड़ा काम करके अभी एक विजयी योद्धा की तरह यहाँ बैठे हैं। तुम लोगों की गिरफ्तारी से हमारा यह उत्साह अपने आप खत्म हो जाएगा। अंग्रेज सरकार को अपने अफसरों की मौत का

गम नहीं है। क्या फर्क पड़ जाता है किसी के मरने से, एक जाता है तो दूसरा आ जाता है; परंतु वह हम लोगों को गिरफ्तार करके कई क्रांतिकारियों के दिलों में यह दहशत बैठाने में कामयाब हो जाएँगे कि क्रांतिकारी किसी घटना को अंजाम देकर अंग्रेजों के हाथों से बच नहीं सकते और मेरे भाई, हमें यह संदेश आम जनता तक पहुँचने से हर हाल में रोकना है, तभी हमारी सफलता सार्थक होगी। और उसका एकमात्र सबसे सुरक्षित रास्ता वही है, जो मैंने तुम्हें बताया है।"

आजाद के इस लंबे भाषण का भगतसिंह पर उचित प्रभाव पड़ा। वे उनकी बात मान गए।

दूसरे दिन लाहौर स्टेशन पर एक साहब कोट-पैंट, सिर पर हैट तथा होंठों में मोटा सा सिगार दबाए उतरे। उनके साथ एक खूब सजी-धजी मेम भी थीं और पीछे चपरासी हाथों में फाइल लिये। साहब बड़े रोब के साथ स्टेशन पर पहुँचे। चपरासी भागकर दो टिकट फर्स्ट क्लास के और एक सेकंड क्लास का ले आया। अफसरों ने उस युवा अधिकारी को देखकर सैल्यूट मारा। साहब सबके देखते-देखते अमृतसर जानेवाली ट्रेन के डिब्बे में बैठ गए। थोड़ी ही देर में ट्रेन सीटी देकर चल पड़ी।

ये अफसर और कोई नहीं, भगतसिंह थे और उनके साथ मेम के रूप में थीं उस समय की प्रसिद्ध महिला क्रांतिकारी दुर्गा भाभी और चपरासी के रूप में थे राजगुरु। अपने इस असाधारण अभिनय से क्रांतिकारियों ने बड़ी आसानी से अंगेजों की आँखों में धूल झोंक दी और लाहौर से निकल आए। चंद्रशेखर आजाद तो बहुरूप बनाने में माहिर थे ही, भगतसिंह को भी कोई खास परेशानी नहीं हुई और सभी क्रांतिकारी अमृतसर पहुँच गए। वहाँ से अलग-अलग ट्रेन में सवार होकर उन्होंने अपनी-अपनी राह पकड़ ली और अंग्रेज सरकार हाथ मलती रह गई। पुलिस के हाथ निराशा के सिवा कुछ नहीं लगा।

❑

21

मोतीलाल नेहरू से भेंट

आजाद की प्रसिद्धि चारों तरफ फैलने लगी थी। उनके विषय में सुनकर एक बार पं. मोतीलाल नेहरू ने उन्हें आनंद भवन (इलाहाबाद) में बुलाया। आजाद आनंद भवन में पहुँचे। दोनों में बहुत देर तक बातचीत होती रही। ब्रिटिश राज के विरुद्ध चल रही क्रांति के संबंध में उन लोगों के बीच ढेर सारी बातें हुईं।

नेहरूजी ने कहा, "आजाद, मुझे नहीं लगता कि तुम मुट्ठी भर वीर मामूली शस्त्रों की सहायता से इतने बड़े तथा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से जीत पाओगे। तुम वीर हो, तुम्हारे अंदर मातृभूमि के प्रति बलिदान का अटूट जज्बा भी है। मैं इन सारी बातों से इनकार नहीं करता आजाद; लेकिन बेटा, जरा शांति से सोचो। इस प्रकार लड़-भिड़कर तुम अंग्रेज सरकार का कुछ नुकसान तो कर लोगे, परंतु क्या उन्हें देश से बाहर निकाल पाओगे?"

"अपना आशीर्वाद हमारे सिर पर बनाए रखिए आप, बाकी सबकुछ हम कर लेंगे। इसे आप निश्चित समझिए।" आजाद ने आत्मविश्वास से कहा।

"लेकिन कैसे? कैसे तुम नामुमकिन को मुमकिन कर पाओगे, आजाद?" मोतीलाल ने पूछा।

"वैसे ही जैसे हाथी को एक छोटी सी चींटी समाप्त कर देती है। वैसे ही जैसे दूध से भरे बड़े-से-बड़े कड़ाह को नीबू की एक बूँद समाप्त कर डालती है। और फिर हमारे साथ तो पूरा देश है, आप जैसे बुज़ुर्गों का आशीर्वाद है। लोगों की सहानुभूति हमारे साथ है, फिर हमें क्या भय! अत्याचारी अगर अपने अत्याचार को बढ़ाता है तो उसका प्रतिकार करनेवाला भी जन्म ले ही लेता है। विद्रोह की यह आग एक दिन इस अत्याचारी साम्राज्य को जलाकर राख कर देगी। यह निश्चित समझिए आप, पंडितजी।"

नेहरू उनकी बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे। आजाद के अतुलनीय आत्मविश्वास का उनके मन पर भी गहरा असर पड़ रहा था।

आजाद ने आगे कहा, "ये घटनाएँ छोटी-मोटी मामूली घटनाएँ लगती हैं। इस तरह ब्रिटिश सरकार को हम यह बताना चाहते हैं कि हम शक्ति में उनसे कम नहीं हैं। अगर ब्रिटिश सरकार अब भी यह बात समझ जाए तो बेहतर है। वरना वह दिन दूर नहीं जब अंग्रेजों को प्रत्येक भारतवासी के रूप में एक क्रांतिकारी मिलेगा और तब उसके लिए अपनी जान बचाकर भागना भी मुश्किल हो जाएगा।"

"परंतु आजाद, इन अफसरों को मारने से क्या फायदा? एक मरता है तो उसकी जगह दूसरा ले लेता है। आखिर ये अफसर ही तो ब्रिटिश सरकार नहीं हैं।"

"हम केवल उन अफसरों का वध करते हैं पंडितजी, जो मानवता के नाम पर कलंक हैं; जो अपने कर्तव्य का निर्वाह मात्र नहीं करते, अपने कर्तव्य की आड़ में भारतीय जनता के साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं। जब अत्याचार अपनी सीमा पार कर जाए तो उससे किनारा भी तो नहीं किया जा सकता। अत्याचार को खामोशी से सहना भी तो एक अत्याचार ही है, पंडितजी। जब अत्याचार सहनेवालों में प्रतिरोध की भावना जाग्रत् हो जाती है तब अत्याचार करनेवाले को उस प्रतिरोध का सामना तो करना ही पड़ता है न।"

पं. मोतीलाल नेहरू आजाद की आत्मविश्वास भरी बातों से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उनकी पीठ थपथपाकर कहा, "जाओ आजाद, सफलता- असफलता तो ईश्वर के हाथ होती है; परंतु संसार में जब भी अपनी मातृभूमि एवं मानवता के कल्याण के लिए संघर्ष करनेवालों का नाम आएगा, तुम्हारा नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाएगा। मैं तुमसे मिलकर बहुत प्रसन्न हूँ आजाद, बहुत प्रसन्न।"

❑

22

अद्भुत घटना

आजाद तीन ग्रामीणों की पकड़ में थे। एक उनका दायाँ हाथ पकड़े था, दूसरा बायाँ हाथ और तीसरा कमर पकड़े था। उनकी पकड़ के ढंग से ही आजाद समझ गए थे कि छद्म वेश में वे पुलिसवाले हैं।

तीनों रेलवे लाइन के पास एक पुलिया की आड़ में बैठे थे। जैसे ही आजाद रेलवे लाइन के किनारे की पगडंडी पर साइकिल से चलते हुए पुलिया पर पहुँचे कि तीनों अचानक झपटकर उनके सामने आ गए।

आजाद भी ग्रामीण बहुरूप में थे। वे उन तीनों ग्रामीणों को अपने सामने देखकर साइकिल से उतर पड़े। उन्होंने साइकिल छोड़ दी। तीनों ने झपटकर उन्हें पकड़ लिया।

उन तीनों में से एक गुप्तचर सेवा के निरीक्षक, दूसरे गोरखपुर कोतवाली के थानाध्यक्ष और तीसरे उपनिरीक्षक थे।

"अच्छा हुआ," आजाद का माथा गर्व से ऊँचा था--- "आप लोग वरदी में नहीं थे, नहीं तो मैं आत्मरक्षा में कुछ भी कर सकता था।"

यह आजाद कोई और नहीं, चंद्रशेखर ही थे। दल के काम से एक ग्रामीण के बहुरूप में गोरखपुर से बस्ती की ओर जा रहे थे। वे तीनों पुलिसवाले उस वक्त की अंग्रेजी सरकार का नमक खाते थे और अपना कर्तव्य निभाने आए थे। सबसे बड़ा गद्दार तो वह मुखबिर था, जिसने उन्हें चंद रुपयों के लालच में सूचना दी थी कि आजाद मंगलवार की शाम को छह बजे रेलवे लाइन के किनारे की पगडंडी पर साइकिल से बस्ती की ओर जाएँगे।

आजाद ने न्यायाधीश द्वारा दिए गए कोड़ों का दंड भोगकर यह प्रतिज्ञा की थी कि अब कोई पुलिसवाला जीवन में उन्हें हाथ भी न लगा सकेगा।

वह भी समय आया, जब आजाद भारतीय समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना के प्रधान सेनापति बन गए। उनके कार्यकलापों ने उन्हें क्रांति का अगुवा बना दिया। अंग्रेजों ने उनको गिरफ्तार करने या करानेवाले को पुरस्कार देने की घोषणा की थी। उनकी गिरफ्तारी के लिए रोज नई रणनीतियाँ बनने लगीं। कई बार घेराबंदी की गई, पर आजाद उनके हाथ न लगे। वे कई बार हाथों में आते-आते फिसल गए। पुलिसवाले उनके माउजर के अचूक निशाने से बुरी तरह घबराते थे।

गुप्तचर से सूचना पाकर तीनों पुलिसवालें ने काफी विचार-विमर्श किया था। उन्हें मुखबिर की सूचना पर विश्वास था, पर यह विश्वास नहीं था कि सूचना के अनुसार ही आजाद अमल करेंगे। अब तक के अनुभवों से उन्हें एहसास था कि आजाद ऐन मौके पर कार्यक्रम बदल देते हैं और घेराबंदी करने वाले ताकते ही रह जाते हैं। बाद में सूचना मिलती है कि आजाद दूसरे रास्ते से निकल गए हैं।

तीनों पुलिसवालों ने कांस्टेबलों को साथ ले जाना उचित न समझा। सोचा कि पुलिया पर अधिक आदमी छिप न पाएँगे। अधिक आदमी देखकर आजाद चौकन्ने हो जाएँगे। बेकार में खून-खराबा होगा। चौकन्ने होने पर आजाद मदमस्त हाथी जैसे हो जाएँगे और तब किसी की उनके निकट पहुँचने की हिम्मत भी नहीं होगी। अगर किसी अन्य

स्थान पर पुलिस बल को छिपाएँगे तो भी कोई लाभ न होगा। आजाद ऐसे रास्ते से अलग और चौकन्ने होकर निकलेंगे।

आखिर में तय यह हुआ कि वही तीनों चलें। सफल हो गए तो पाँचों उँगली घी में और असफल हो रहे तो वही नून-तेल-खटाई।

गुप्तचर इंस्पेक्टर ने शंका प्रकट की--- "वरदी में चलना ठीक न होगा, वरदी की झलक पाते ही आजाद चौकन्ने हो जाएँगे। अगर वे भागने में सफल हो गए तो हममें से एक-दो को उनकी गोलियों का निशाना बनना ही पड़ेगा।"

तीनों निश्‍चित समय पर ग्रामीणों के बहुरूप में पुलिया के नीचे आ गए।

आजाद का शरीर शक्तिवान् ही नहीं था, बल्कि उसमें कूट-कूटकर चुस्ती भी भरी थी। पुलिया के नीचे पहुँचते ही उन्होंने सहसा एक ऐसा झटका दिया कि तीनों की पकड़ से निकल गए।

अगले ही पल आजाद बिजली जैसी फुरती से उछलकर एक ओर खड़े हो गए। तीनों उनके सामने डट गए। पलक झपकते ही आजाद का माउजर हाथ में आ गया। तीनों मौत को सामने देखकर सहम गए।

आजाद ने पिस्तौल की नली नीची कर ली--- "मैं भागूँगा नहीं, तुम्हारे ऊपर गोली भी नहीं चलाऊँगा। अपने ही देशवासियों के खून से हाथ नहीं रँगूँगा। आओ, बैठकर बातें कर लें। यह ध्यान रहे कि तुम तीनों मिलकर भी मुझे गिरफ्तार करके न ले जा पाओगे, कम-से-कम जीवित तो कभी भी नहीं।"

तीनों पुलिसवाले भी उनके साथ नीचे जमीन पर बैठ गए। आजाद ने पिस्तौल हाथ में ही रखी, पर उसकी नली झुकी रही।

एक पुलिसवाले ने कहा, "पंडितजी, चिंता न करें। हम तीनों के अलावा यहाँ और कोई नहीं है। किसी उच्चाधिकारी को सूचना भी नहीं है। आप विश्‍वास रखें।"

आजाद ने दूसरी ही बात छेड़ दी, "मुझे गिरफ्तार करके तुम्हें नकद पुरस्कार और पदोन्नति मिलेगी। रुपया तो मैं भी दे सकता हूँ, पर पदोन्नति मेरे हाथ में नहीं है।"

तीनों ने एक स्वर से रुपए लेने से इनकार कर दिया।

आजाद हँसे--- "आज मैं दल के एक आवश्यक काम से जा रहा हूँ। काम बहुत जरूरी है। कल शाम को आपके थाने पर गिरफ्तारी देने आ जाऊँगा। आजाद की बात पत्थर की लकीर होती है। अगर भारत माँ के बेटे ही उसे जंजीरों में जकड़े रहने देना चाहते हैं तो यही सही।"

तीनों पुलिस अधिकारियों की निगाहें एक-दूसरे से मिलीं। अचानक उनके दिलों में एक निराला प्रकाश-सा कौंध गया।

कोतवाल बोला, "पंडितजी, आप जाइए, गिरफ्तारी देने की जरूरत नहीं है; मगर..."

"हाँ-हाँ, बताइए।" आजाद ने बात काट दी, "क्या कहना चाहते हैं आप?"

गुप्तचर निरीक्षक के होंठ हिले--- "अगर हमारे अंग्रेज अधिकारियों को आज की घटना ज्ञात हो गई तो वे हम तीनों को कोल्हू में पिरवा डालेंगे, हमारे मकान खुदवा डालेंगे। हमारे पास जो कुछ है, सब जब्त कर लेंगे। बीवी-बच्चों तक को सजा भोगनी पड़ेगी। क्यों भाई अब्दुल रहीम!"

युवा उपनिरीक्षक कबीर अहमद को जोश आ गया--- "कुछ भी हो, पर अब हम पंडितजी को गिरफ्तार नहीं करेंगे। जो होगा, देखा जाएगा। जहाँ देश पर इतने लोग कुर्बान हो रहे हैं, वहाँ हम भी सही।"

इंस्पेक्टर अब्दुल रहीम ने स्वीकृति की मुहर लगा दी, "ठीक है भाई, ऐसा ही सही, यह कुर्बानी भी सही।"

आजाद की आँखों में बिजली-सी कौंधी--- "मैं कौन अपनी आत्मकथा लिखने या लिखवाने जा रहा हूँ। यह भी

बताए जा रहा हूँ कि अंग्रेज मुझे गिरफ्तार न कर पाएँगे। उनकी गोली भी मुझे न मार पाएगी। यह अधिक संभव है कि मेरी मृत्यु मेरी ही अंतिम गोली से हो।"

अंत में चारों ने बैठकर शपथ ली कि उस घटना का जिक्र कभी किसी से नहीं करेंगे।

❑

23

असेंबली में विस्फोट की योजना

ब्रिटिश सरकार भारत में आजादी की माँग को दबाने के लिए तरह-तरह के कानून बनाती थी। संसद् उनकी थी, लोग उनके थे। उन कानूनों को पास होने से कोई रोक ही नहीं सकता था।

गांधीजी के पास सत्याग्रह का एक बहुत कारगर हथियार था। वह था अंग्रेजों एवं उनकी सरपरस्ती में चलनेवाले उद्योगों के कामगारों से काम रुकवा देना। अर्थात् हड़ताल होने से अंग्रेजों को दो-तरफा हानि होती थी-एक तरफ तो उत्पादन कम हो जाता था और आर्थिक दबाव बढ़ जाता था, दूसरे पूरे विश्व में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे जुल्मों का संदेश जाता था। यह ब्रिटिश सरकार के लिए बहुत ही हानिकर स्थिति होती थी।

इस स्थिति के निराकरण के लिए अंग्रेजों ने एक कानून बनाया, जिसका नाम रखा गया 'पब्लिक सेफ्टी बिल'। पब्लिक सेफ्टी बिल मजदूरों एवं कामगारों के अधिकारों में कटौती करने के लिए बनाया गया था। इससे मजदूर किसी भी परिस्थिति में हड़ताल पर नहीं जा सकते थे। साथ ही इस बिल में कई प्रावधान ऐसे भी सम्मिलित किए गए थे, जिनसे मजदूरों के मौलिक मानवीय अधिकार भी बाधित होते थे।

पब्लिक सेफ्टी बिल के विषय में सुनकर चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच गई। मजदूर वर्ग अपने भविष्य को लेकर चिंतित हो उठा। यह बिल मजदूरों के पेट भरने तथा तन ढकने के मौलिक अधिकार को भी छीन लेना चाहता था।

यह बिल 9 अप्रैल, 1929 को असेंबली में पेश होना था और यह तय था कि यह बिल पास हो जाएगा।

कांग्रेस भी अपने तरीके से इसका विरोध कर रही थी। गांधीजी ने इस बिल के विरोध में अनशन करने की चेतावनी भी दी; परंतु किसी भी हालत में अंग्रेज सरकार इस बिल को रोकने के लिए तैयार नहीं थी। मजदूर संगठन अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे और इस बिल का पुरजोर विरोध कर रहे थे।

क्रांतिकारियों ने भी इस बिल का विरोध करने का निश्चय किया। आजाद की राय थी कि उसी दिन असेंबली के चारों तरफ कुछ बम लगाकर उसे उड़ा दिया जाए। भले ही असेंबली न उड़े, परंतु ब्रिटिश सरकार के कुछ नुमाइंदे तो जरूर मरेंगे और निश्चित तौर पर ब्रिटिश गवर्नमेंट को यह बिल रोकना होगा।

"परंतु कब तक, कब तक इस तरह हम इस बिल को रोक पाएँगे, आजाद भैया?" भगतसिंह ने कहा, "ठीक है, कुछ समय के लिए निश्चित रूप से इस तरह यह बिल रोका जा सकता है; लेकिन अंतत: तो यह पास हो ही जाएगा और फिर आप यह क्यों नहीं सोचते हैं कि इसके बाद ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारियों तो क्रांतिकारियों बल्कि आम जनता तक का जीना हराम कर देगी। कितने ही बेगुनाहों को ब्रिटिश सरकार के प्रतिशोध का सामना करना होगा। क्षमा कीजिए आजाद भैया, परंतु यह रास्ता उचित नहीं होगा।"

"परंतु भगत, हमें इस बिल का विरोध तो करना है न भाई, और इस बिल के विरोध में दल असेंबली से बाहर कुछ करेंगे तो यह बिल नहीं रुकेगा। करना तो हमें असेंबली में ही कुछ होगा। अब सवाल यह है कि क्या करना होगा? मैंने अपनी राय तुम लोगों के सामने रख दी है, अब यह तुम लोगों को सोचना है कि क्या करना है।" आजाद ने कहा।

“आजाद भैया, हमें गांधीजी के मार्ग में अपना मार्ग जोड़ देना है। यही सबसे शाश्वत एवं सार्थक तरीका होगा इस बिल को रोकने का।” भगत का चेहरा पूरी तरह गंभीर था।

“क्या?” कई लोगों के मुँह से एक साथ निकला--- “परंतु ऐसा कैसे संभव है? गांधीजी का मार्ग अहिंसा का मार्ग है। वे विरोध का नहीं, माँग का समर्थन करते हैं। भगतसिंह, हम क्रांतिकारी अचानक ही उस मार्ग पर कैसे जा सकते हैं?” आजाद ने कहा।

“गांधीजी सिर्फ एक भूल करते हैं। वे अपनी अहिंसा को इतना कमजोर व लचर रूप में प्रस्तुत करते हैं कि उसकी न्यायपूर्ण माँग भी याचना बनकर रह जाती है; परंतु हम ऐसा नहीं करेंगे। हम अपनी माँग पूरे सशक्त ढंग से अंग्रेजों के सामने रखेंगे। हम याचना नहीं करेंगे, बल्कि अंग्रेजों को यह बताएँगे कि हम हिंसा-प्रिय नहीं हैं। हिंसा करने को वे ही हमें विवश करते हैं।” भगतसिंह ने कहा।

“परंतु कैसे, अपनी योजना स्पष्ट करो, भगत?” आजाद के चेहरे पर उलझन थी।

“हम असेंबली हॉल में बम फेंकेंगे, परंतु ऐसा बम जिससे कोई हताहत न हो, किसी की उँगली तक न छिले; परंतु धमाका जोरों का हो, इतना जोर का धमाका कि भारत से लेकर इंग्लैंड तक यह अंग्रेजी सरकार थर्रा जाए। इसी के साथ हम वहाँ क्रांतिकारियों के उद्देश्य से संबंधित परचे फेंकेंगे, ताकि अंग्रेज उन्हें पढ़ें और हमारे उद्देश्य की गहराई तक पहुँचें। निश्चित रूप से यह कार्य असेंबली में नई बहस का आधार बन जाएगा और यह बिल तात्कालिक तौर पर अंग्रेजों को रोकना होगा।” भगतसिंह ने अपनी योजना विस्तृत रूप से पेश की।

“परंतु बम फेंकने के बाद हम वहाँ से निकलेंगे कैसे? इतनी देर में तो वहाँ पुलिस का जमघट लग जाएगा।”

“बम फेंकनेवाला वहाँ से भागेगा नहीं आजाद भैया, बल्कि अपनी गिरफ्तारी देगा और असेंबली से लेकर अदालत तक अंग्रेजों के जुल्मों की गाथा कहेगा। यकीन कीजिए, हमारे इस कार्य से लोगों में एक नई चेतना आएगी। हम क्रांतिकारियों के प्रति उनके दिलों में एक नया विश्वास जन्म लेगा और यही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।”

“परंतु भगत, गिरफ्तारी के बाद अंग्रेजों के जिन अत्याचारों का सामना उसे करना होगा, उसकी कल्पना भी की है तुमने? अंग्रेज उस व्यक्ति को जीते-जी ही मार डालेंगे। बहुत जुल्म करेंगे उस पर।” आजाद के चेहरे पर चिंता की लकीरें खिंच आई थीं।

“आजाद भैया, अंग्रेजों का जुल्म तो सारे भारत पर हो रहा है। एक हम ही क्या, सारी कौम अंग्रेजों के इस जुल्म का शिकार है। और हम तो सिर पर कफन बाँधकर निकले हैं, फिर इस जुल्म से क्या डरना! वैसे भी ‘गीता’ में श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह शरीर आत्मा नहीं है, यह तो जड़ है। फिर इस जड़ शरीर पर चाहे जो भी हो, हमारा विश्वास, मातृभूमि के प्रति हमारा प्रेम हमें उस जुल्म को सहने की शक्ति देगा।”

“परंतु यह कार्य करेगा कौन?” आजाद जैसे भगत की योजना से कुछ सहमत हो रहे थे।

“एक तो मैं और दूसरा जो भी मेरे साथ आना चाहे।”

“और एक मैं।” बटुकेश्वर दत्त ने हाथ उठाकर कहा।

“नहीं, तुम नहीं, भगत।” आजाद ने सपाट स्वर में कहा, “अंग्रेज सरकार तुम्हें हर कीमत पर फाँसी पर लटका देगी और मैं यह बरदाश्त नहीं कर पाऊँगा। यह जिम्मेदारी किसी और को उठानी होगी। अगर कोई नहीं तो मैं जा सकता हूँ, परंतु तुम नहीं।” आजाद का स्वर भावावेश में काँप रहा था।

“आजाद भैया।” भगत मुसकरा रहे थे, “इस सारे कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है अदालत में अपनी बात सही ढंग से रखना। मुझे आपकी योग्यता पर संदेह नहीं है। मैं जानता हूँ कि आप अपनी बात उसी तरह और उतने ही बेहतर तरीके से रख सकते हैं जितना कि मैं। परंतु भैया, जो विचार मेरे मस्तिष्क में हैं, मेरी सोच में हैं, उन्हें

आप कैसे रख पाएँगे? मैं संसार को यह दिखा देना चाहता हूँ कि क्रांतिकारी सिर्फ गोली-बंदूक नहीं चलाते। हमें हिंसा से प्रेम नहीं है, हमसे हिंसा कराई जाती है और वह हिंसा हमसे कराती है यह ब्रिटिश सरकार। यह सरकार हमें हिंसक बनने पर विवश करती है।"

"परंतु भगत..." आजाद की आवाज में कंपन था।

"आजाद भैया, भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि मोह मत करो-न स्वयं का, न किसी और का। जिसे मरना होगा, उसे संसार की कोई भी ताकत, कोई भी शक्ति बचा नहीं सकती और जिसे बचना होगा, संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति आज तक पैदा नहीं हुआ, जो उसे मार सके। मरने-जीने के डर से हम अपने कर्तव्य से मुँह तो नहीं मोड़ सकते, आजाद भैया। हमें अपना कर्म करने दीजिए। संसार में कितने भगतसिंह आएँगे, चले जाएँगे; परंतु संसार क्या उन सबको याद रख पाएगा? हाँ, मातृभूमि की वेदी पर चढ़नेवाले भगतसिंह को लोग आसानी से नहीं भूल पाएँगे।"

"ठीक है भगत, जैसी तुम्हारी इच्छा। जो ईश्वर की मरजी होगी, वही होगा।"

❑

24

अहिंसक विस्फोट

8 अप्रैल, 1929-असेंबली में आज 'पब्लिक सेफ्टी बिल' एवं 'औद्योगिक विवाद बिल' पर बहस होनी थी। पूरी असेंबली खचाखच भरी थी। सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दोनों अपनी वास्तविक पहचान छिपाते हुए असेंबली हॉल की दर्शक दीर्घा में बैठे सदन की कार्रवाई देख रहे थे। वे बड़ी सावधानी से छिपाकर दो अहिंसक बम, जिनमें आवाज थी, धुआँ था, परंतु किसी की उँगली तक जलाने की क्षमता नहीं थी, ले आए थे।

जब असेंबली में बड़ी गंभीरता से बिल पर चर्चा हो रही थी, तभी वे दो बम बड़ी तीव्रता के साथ गूँजे। असेंबली में भगदड़ मच गई। सारी असेंबली दंग रह गई। एक क्षण के लिए लोगों को ऐसा लगा मानो कोई अनहोनी घट गई है। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। 'भारत माता की जय', 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारों से लोगों की जड़ता टूटी। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त खड़े होकर 'भारत माता की जय' के नारे लगा रहे थे।

सहसा एक अधिकारी गुर्राया, "गिरफ्तार कर लो इन दंगाइयों को।" परंतु भगत और बटुकेश्वर दत्त निःशंक होकर परचे फेंक रहे थे।

"हम दंगाई नहीं हैं, महोदय!" भगत जोर से बोल रहे थे, "हम इस बहरी सरकार के कानों तक अपनी आवाज पहुँचाने आए हैं। ब्रिटिश सरकार, अभी भी वक्त है। इनकलाब आ रहा है, भारत के लोगों की आवाज सुनो। कहीं ऐसा न हो कि बहुत विलंब हो जाए और हर भारतीय तुम्हारा दुश्मन हो जाए।"

पुलिस के कुछ सिपाही उनकी ओर बढ़ रहे थे; लेकिन भारत माता के उन सपूतों के चेहरों पर चिंता की एक लकीर तक नहीं थी। वे अब भी अपनी उसी तेज और प्रखर आवाज में बोल रहे थे।

"हमारा इरादा किसी को चोट पहुँचाना या किसी की हत्या करना नहीं है। हम हंगामा खड़ा करने में यकीन नहीं रखते। भारत और भारतवासी शांति के साथ मिल-जुलकर सारी दुनिया में प्रेम बाँटना चाहते हैं। परंतु हमारा यह प्रेम अंग्रेजी सरकार के हाथों बंधक पड़ा है। हमारे प्रेम को इनकी नजर में हमारी कायरता समझा जाता है।"

पुलिस के सिपाही उनके हाथों में हथकड़ियाँ लगा रहे थे; परंतु आजादी के उन दीवानों के चेहरों पर मुसकान थी। कोई प्रतिरोध नहीं, कोई इनकार नहीं। वे हथकड़ियाँ नहीं बल्कि मानो मातृभूमि पर न्योछावर हो जाने का इनाम प्राप्त कर रहे थे। भगत अभी भी अपनी बुंद आवाज में असेंबली के सदस्यों को संबोधित कर रहे थे।

"असेंबली के सदस्यो! कोई भी शासन चाहे जितना भी क्रूर हो, वह गरीब एवं मजलूम जनता का सिर काट सकता है, उसकी जुबान नहीं। इतना याद रखो कि इतिहास एक-न-एक दिन तुम्हें एक कायर और अत्याचारी के रूप में याद रखेगा। अब भी वक्त है, अपने देश लौट जाओ और भारत की जनता को उसका जन्मसिद्ध अधिकार वापस कर दो।"

लोग ध्यान से भगतसिंह की बात सुन रहे थे--- "हम सब भारतवासी 'पब्लिक सेफ्टी बिल' का विरोध करते हैं।"

असेंबली के अधिकांश सदस्य भगतसिंह की बातों से सहमत नजर आ रहे थे।

पुलिस उन शेरों को पकड़कर अपने साथ ले गई। उन्होंने स्वेच्छा से स्वयं को पिंजरे में बंद करा लिया था।

पुलिस का दमन-चक्र एक बार फिर तेज हो गया। पंजाब और उत्तर प्रदेश में जगह-जगह छापे मारे जाने लगे, क्रांतिकारी गिरफ्तार किए जाने लगे। कितने ही निर्दोष लोगें को भी सरकार ने जेलों में बंद कर दिया। दुख इस बात का था कि कितने ही प्रमुख क्रांतिकारी भी इस बार पुलिस के हाथों में आ गए। परंतु आजाद आजाद ही रहे। उन्होंने बड़ी सफाई से पुलिस को चकमा दे दिया और फरार हो गए।

पकड़े गए क्रांतिकारियों के विरुद्ध अदालत में कई मुकदमे चलाए गए। अदालत में भगतसिंह ने कहा, "महोदय, हम हिंसा नहीं चाहते। अगर हमें हिंसा प्रिय होती तो आप देखते कि ब्रिटिश सरकार का कोई भी नुमाइंदा असेंबली हॉल से बचकर वापस नहीं जा पाता। महोदय, हम तो आजादी चाहते हैं, मात्र आजादी-और कुछ नहीं। यह सरकार अपने कान बंद करके बैठी है। इस धमाके से हमने इस सरकार के बंद कानों को खोलने का प्रयास किया है।"

मुकदमा चलता रहा। अदालत न्याय के प्रति उदासीन थी। अंग्रेजी सरकार के पिट्ठ। न्यायाधीश स्पष्ट रूप से अन्याय कर रहे थे। अंतत: भगतसिंह ने अदालत का बहिष्कार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि अदालत चाहे जो भी फैसला कर ले, परंतु मुझे न्याय की सरेआम हत्या होते देख अदालत जाना मंजूर नहीं है।

भगतसिंह और उनके क्रांतिकारी साथियों पर कई मुकदमे चलाए गए और आखिरकार ब्रिटिश सरकार ने अपनी मनमानी कर ली और भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव को मौत की सजा सुना दी गई। बटुकेश्वर दत्त तथा अन्य क्रांतिकारियों को कालेपानी की सजा दी गई।

❑

25

अंतर्द्वंद्व

जीवन का यह रास्ता भी कितना अजीब है-बिलकुल नदी की लहरों के समान: कभी तो इसमें ऐसी तरंगें उठती हैं मानो ये अपने साथ संपूर्ण संसार को ही बहा ले जाएँगी और कभी इतनी शांत हो जाती हैं, मानो थककर विश्राम कर रही हैं।

आजाद यमुना किनारे घूमते हुए सोच रहे थे, 'मेरा जीवन भी तो कुछ ऐसा ही है, इस नदी की लहरों के समान, जो न जाने कब से निरंतर चलता ही जा रहा है, चलता ही जा रहा है। जहाँ विश्राम है, न शांति-बस एक गति, जो निरंतर अपने निश्चित पथ की ओर अग्रसर है।'

आज कितने ही दिनों बाद आजाद आए थे इस नदी के किनारे। सरसता तो मानो उनके जीवन में कहीं बहुत पीछे छूट गई थी; परंतु जीवन वास्तव में है क्या? क्या मात्र एक रूखी-सूखी कल्पना? नहीं, जीवन वही नहीं है। जीवन प्रेम भी है, जीवन सौंदर्य भी है। ये चारों तरफ खिले हुए सरसों के मुसकराते फूल, खेतों में फगुए की तान छेड़ते मस्त किसान, ये साग चोंहती महिलाओं के मुँह से निकला मनमोहक संगीत--सबकुछ कितना सरल है, कितना सुघड़ है! फूलों की डालियों पर मँडराती इन तितलियों को आखिर किस बात का गम है! कितनी प्रसन्न हैं ये! पेड़ों की डालियों पर जीवन का संगीत सुनाती ये चिड़ियों की चहचहाहट कितनी मधुर है! हँसी में तो जीवन की मस्ती छुपी हुई है, परंतु इन सबके पीछे इनकी आजादी की खूबसूरत दुनिया है। ये फूल, ये तितलियाँ, ये चिड़ियों का चहचहाना-सबकुछ बस आजादी का संगीत है।

चंद्रशेखर आजाद की चिंता यही थी कि यह देश आजाद नहीं था, गुलामी की जंजीरों से जकड़ा हुआ था। फिर वे प्रकृति की इस सरसता का आनंद भला कैसे उठा सकते हैं। ब्रिटिश राज ने भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव जैसे देशभक्तों को फाँसी का दंड सुनाया था। कितने ही साथी कालेपानी की सजा काट रहे थे। ये सभी वीर आजादी के मतवाले थे। कितने ही और लोग इस आजादी की भेंट चढ़ चुके थे और आजादी न जाने कब मिले।

आजाद का मन आज कुछ अजीब तरह का हो रहा था। वे खुद नहीं समझ पा रहे थे कि वास्तव में वे चाहते क्या थे? उनकी आकांक्षा क्या थी? जो हृदय निरंतर उत्साह से भरा रहता था, आज अचानक वह इतना उदास क्यों था? यह कैसा अंतर्द्वंद्व था

'अचानक नहीं।' आजाद बड़बड़ाए, 'अचानक नहीं। काकोरी कांड के बाद ही रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला के फाँसी पर चढ़ जाने के बाद मेरा हृदय टूट गया था। निराशा की गहन चादर ने मेरे अस्तित्व को ढँक लिया था। वह तो वीर सावरकर ने ही मुझे आशा की एक नई राह दिखाई, एक नया साथी दिया भगतसिंह के रूप में। बिस्मिल के चले जाने के बाद मेरे टूटे मन को भगतसिंह के आ जाने के बाद बहुत शांति प्राप्त हुई थी। एक बार फिर यह आशा बँधी थी कि हम यह जंग जीत लेंगे; परंतु...परंतु आज, आज फिर ऐसा लग रहा है मानो सबकुछ कहीं खो गया, सारी आशाएँ टूट गईं, सारे सपने बिखर गए।

'इन साथियों के बाद अब क्या होगा? क्या भगत और बिस्मिल जैसे साथी फिर मिल पाएँगे? नहीं, कदापि नहीं।

आजादी के वे मतवाले अब कहाँ मिलेंगे? तो क्या भारत माता इन वीर सपूतों के ऐसे अविस्मरणीय बलिदान के बाद भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी रहेगी

'नहीं, ऐसा नहीं होगा। यह देश आजाद होगा, निश्चित रूप से होगा। हम वीरों का लहू कभी बेकार नहीं जाएगा। लेकिन कब, कब...?' इसका उत्तर उस महावीर के पास नहीं था।

'ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ भी संभव नहीं है। उसी की जब इच्छा होगी, यह देश पुन: अपने अतीत के गौरव को प्राप्त कर पाएगा। यह कांग्रेस, इसने तो आजादी को मजाक बना दिया है। क्या आजादी कोई वस्तु है, जो माँगने से मिल जाएगी? आजादी तो लेनी पड़ती है, छीननी पड़ती है और शायद वह दिन अब दूर नहीं, जब हमें ऐसा करने से कोई रोक पाएगा। जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न करना हमारा लक्ष्य था, वह हमने कर दिया। आज देश का बच्चा-बच्चा अंग्रेज सरकार का दुश्मन बन गया है। बस, और क्या चाहिए था हमको। एक-न-एक दिन इन आततायियों को यह देश छोड़ना ही होगा।

'बिस्मिल न रहें, भगतसिंह न रहें, आजाद न रहें; परंतु यह देश रहेगा। इस देश पर मिटनेवाले कयामत तक सलामत रहेंगे।'

'सन् 1857 की क्रांति से लेकर आज तक स्वतंत्रता की यह अग्नि कभी धीमी तक नहीं पड़ी। लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे जैसे महावीर मार दिए गए, परंतु स्वतंत्रता की यह यज्ञ-वेदी निरंतर प्रज्वलित रही और प्रज्वलित रहेगी। अंग्रेज सरकार चाहती है कि जाति-धर्म के झगड़ों में उलझाकर इस देश का शोषण करती रहे; लेकिन यह असंभव है। अशफाक और बिस्मिल हमेशा ही इस देश में पैदा होते रहे हैं और होते रहेंगे।'

'कांग्रेस की नींव भी तो ए.ओ. ह्यूम ने यही सोचकर डाली थी। उन्होंने सोचा था कि पढ़े-लिखे लोग कांग्रेस में आ जाएँगे। इस तरह बौद्धिक विरोध खत्म हो जाएगा। परंतु हुआ उसके विपरीत, अब वही कांग्रेस अंग्रेजों के गले की हड्डी बनी हुई है।'

कांग्रेस से सहसा उनकी विचारधारा गांधी की अहिंसा की तरफ चली गई-'गांधीजी अहिंसा की बात करते हैं। क्या है अहिंसा? क्या इसकी सरल नीति के कारण ही लोग इसे पसंद करते हैं?'

वे थोड़ी देर तक गहन चिंतन करते रहे, फिर उनके विचारों में एक बहुत स्पष्ट विचार आया---'हाँ, गांधीजी शायद ठीक कहते हैं। अहिंसा का मार्ग बहुत साहस और वीरता का मार्ग है। अपनी प्रतिहिंसा को अपने अंदर दबाकर सत्य और न्याय की बात कहने का सामर्थ्य कोई मामूली सामर्थ्य नहीं हो सकता। शायद हमारे जैसे नौजवानों के लिए उससे कठिन और कुछ नहीं है।'

'भगतसिंह भी गांधी की अहिंसा को सम्मान देता है; परंतु उसकी अहिंसा निरीह अहिंसा नहीं है। सौ दिन से ज्यादा का उपवास किया है उसने जेल में। पानी तक नहीं पिया और आखिरकर अंग्रेजों को उसके सामने झुकना पड़ा। परंतु उसकी इस अहिंसा में एक ओज था, गांधी की अहिंसा कुछ छुपाने का प्रयास करती हुई-सी लगती है। भगत की अहिंसा स्पष्ट है, गांधी की अहिंसा निरीह है। भगतसिंह की अहिंसा ओजपूर्ण है। परंतु मेरे लिए तो अहिंसा का यह मार्ग अब बंद ही हो गया है। आज मैं अंग्रेजों का सबसे बड़ा दुश्मन हूँ। मेरे ऊपर 10 हजार का इनाम है। अगर ब्रिटिश सरकार को मैं आज मिल जाऊँ तो वह मेरी बोटी-बोटी काट डाले। पर इतना आसान है क्या मेरा मिलना? लगा ले यह सरकार अपना सारा जोर, परंतु मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं पाएगी।

'सरकार अपना काम करती रहे, मैं अपना काम करता रहूँगा। भले ही उत्तर में हमारा संगठन मिट गया; परंतु कोई बात नहीं, अब मैं दक्षिण में जाऊँगा। दक्षिण से ही अपने आंदोलन का संचालन करूँगा। पूज्य गुरुवर सावरकरजी का आशीर्वाद तो साथ है ही। मुझे सफलता जरूर मिलेगी।'

वे नई आशा और विश्वास के साथ वहाँ से चल पड़े। एक बार कुछ लोगों ने आजाद से कहा, "आजादजी, अब क्रांतिकारी दल बिखर चुका है। आप रूस चले जाएँ।"

उस समय आजाद ने उनसे कहा था, "यह शरीर भारत की माटी से बना है। मैं भारत की माटी में ही सुख की नींद सो सकता हूँ। अपनी जान बचाने के लिए माँ भारती की गोद छोड़ना मुझे मंजूर नहीं है।"

❑

26

विश्वासघात

वीरभद्र तिवारी का मन उसे कचोट रहा था। वह करवटें बदल रहा था। उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कार रही थी। वह रात भर चैन की नींद नहीं सो सका। रह-रहकर वह सोच रहा था, 'क्या आजाद जैसे सुंदर, वीर पुरुष और देश के सच्चे सपूत के साथ विश्वासघात करना ठीक रहेगा? नहीं, यह मैं नहीं कर सकता।'

वीरभद्र तिवारी काकोरी कांड में अन्य क्रांतिकारियों के साथ गिरफ्तार हुआ था। बाद में रहस्यमय कारणों से उसे छोड़ दिया गया था। कहते हैं कि वह पुलिस से मिल गया था। यह वही वीरभद्र तिवारी था, जो कभी क्रांतिकारियों के दल का एक सदस्य हुआ करता था। वह अंतर्द्वंद्व से जूझ रहा था।

'आजाद एक देवता-स्वरूप व्यक्ति हैं, जिसका संसार में अपना कुछ भी नहीं। वे सबकुछ देश के लिए कर रहे हैं। जिसने जवानी की उन्मुक्त तरंगों को ब्रह्मचर्य की कठोर साधना में दबाकर अपना जीवन ही मातृभूमि की सेवा में अर्पित कर दिया है, जिसका प्रत्येक क्षण देश-हित के चिंतन में बीतता है।

'संसार का सबसे बड़ा पाप है विश्वासघात। नहीं, ऐसे व्यक्ति के साथ इतना बड़ा पाप मुझसे नहीं हो सकेगा।'

फिर अचानक तिवारी के दिमाग में इंस्पेक्टर के कहे शब्द गूँजने लगे, 'तिवारीजी, संसार में कोई किसी का नहीं होता। सबसे बड़ा मित्र तो पैसा है। पैसा जिसके पास होता है, उसके सब मित्र होते हैं। बुरे समय में जब बड़े-से-बड़े घनिष्ठ मित्र और सगे-संबंधी साथ छोड़ देते हैं तो पैसा ही सबकुछ होता है। बिना पैसे के जीवन व्यर्थ है। फिर पैसा कमाने का अवसर भी क्या रोज-रोज आता है? समय चूक जाने पर आदमी जीवन भर पछताता है। पाप और पुण्य सब व्यर्थ की बातें हैं। भला अपना और अपने बाल-बच्चों का जीवन सुधारने में पाप कैसा?' लालच से उसका माथा घूमने लगा।

अब तिवारी की आँखों के सामने नोटों की गड्डियाँ घूम रही थीं। भविष्य में मिलनेवाली 5 हजार के नोटों की दूसरी गड्डी। सरकार की वफादारी का तमगा और बच्चों को मिलनेवाली ऊँची सरकारी नौकरियाँ-एक के बाद एक तिवारी हर बात सोचने लगा।

लालच उसे अपने चंगुल में फँसा चुका था, परंतु अंतरात्मा उसे कोस रही थी। अंतरात्मा ने फिर पुकारा, 'तिवारी, तू संसार में मुँह दिखाने योग्य नहीं रहेगा। तुझे सब देशद्रोही, विश्वासघाती, दुष्टात्मा कहकर पुकारेंगे...। केवल इतना ही नहीं, तेरे उत्तराधिकारी भी देशद्रोही की संतान कहकर पुकारे जाएँगे। तेरे पाप का फल तेरी पीढ़ियों तक को भोगना पड़ेगा।'

फिर उसके सामने पुलिस इंस्पेक्टर का चेहरा घूमने लगा, 'देखना, वादा पक्का हो। झूठा वादा सरकार के प्रति धोखा समझा जाएगा और हम व आप कहीं के नहीं रहेंगे।'

लालच धीरे-धीरे उसकी अंतरात्मा पर परदा डालता चला गया। अब उसके विचार कुंठाग्रस्त होने लगे थे। वह झूठे तर्कों से मन को समझाने का प्रयास कर रहा था। जल्दी ही वह इंस्पेक्टर से किए गए वादे के पक्ष में सोचने लगा, 'मेरे वादे पर विश्वास करके कल से पुलिस अपनी योजना बनाने में लगी है। अब जब मैं इंस्पेक्टर से 5

हजार रुपए ले भी चुका हूँ, सरकार को धोखा नहीं दे सकता। अगर मैंने धोखा किया तो सरकार मेरे पीछे पड़ जाएगी। फिर आजाद की जगह मुझे जेल में बंद कर दिया जाएगा।'

तिवारी के सामने अचानक ही पुलिस, जेल और तरह-तरह की यातनाओं के चित्र घूमने लगे। वह भय से काँप उठा, 'तब तो मैं सचमुच ही कहीं का न रहूँगा। पुलिस से 5 हजार रुपए लेने की बात भी तब सबके सामने आ जाएगी और मैं आजाद, पुलिस एवं जनता की दृष्टि में गिर जाऊँगा। इससे अच्छा तो यह है कि मैं पुलिस की बात मान लूँ। कम-से-कम मुझे अधिक लाभ तो हो जाएगा।'

कुछ देर संकल्प-विकल्प के बीच पड़े रहने के पश्चात् अंत में लालच की विजय हुई। उस देशद्रोही ने अपनी अंतरात्मा से उठ रही आवाज को अनसुना कर दिया। अब वह अपने कुत्सित कृत्य की योजना बनाने में जुट गया।

'नगर सेठ के पास क्रांतिकारी दल का 8 हजार रुपया जमा था। परसों आजाद सेठ से रुपया माँगने आए थे। उनके साथ मैं भी सेठ के यहाँ गया था। शायद सेठ की नीयत बदल गई है। मुझे लगता है, अब वह रुपया लौटाना नहीं चाहता। वह जानता है कि अब क्रांतिकारी दल समाप्त हो चुका है। केवल आजाद ही तो हैं। तभी वह टाल-मटोल कर रहा है। फिर भी आजाद से वह डरता है, इसलिए साफ मना नहीं कर सका। कल दोपहर तक उसने रुपया लौटा देने की बात की है। क्यों न मैं इस मौके का फायदा उठाऊँ। सेठ से उन रुपयों को ऐंठने में क्या हर्ज है

'चंद्रशेखर आजाद की मित्रता से भला मुझे क्या मिलेगा! राजद्रोह और पुलिस से शत्रुता के कारण जीना दूभर हो जाएगा। फिर वह पुलिस इंस्पेक्टर भी ठीक ही कहता था। संसार में रुपया ही सबकुछ है। रुपए वाले के पाप-दोष सब क्षमा कर दिए जाते हैं। रुपए-पैसेवाला व्यक्ति पापी होते हुए भी समाज में सम्मानित व्यक्ति समझा जाता है।

'मुझे इस अवसर को हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। फिर परेशानीवाली बात भी क्या है? कल कुछ ही घंटों के लिए तो जी कड़ा करना है। उसके बाद तो मौज-ही-मौज है। आजाद गिरफ्तार हुआ तो फाँसी पर अवश्य लटका दिया जाएगा या फिर वहीं पुलिस की गोली से भून डाला जाएगा। वह चाहे कितना भी अच्छा निशानेबाज क्यों न हो, हजारों पुलिसवालों से कैसे बच सकता है? इस तरह से मुझे किसी बात का भय नहीं होना चाहिए।

'माना आजाद की गिरफ्तारी के बाद लोग मुझे कोसेंगे और भला-बुरा कहेंगे, लेकिन कब तक? धीरे-धीरे सब ठंडा पड़ जाएगा। समय बीतने पर लोग यह सब अपने आप ही भूल जाएँगे। बाद में कौन किसे बुरा कहता है! बुराई-भलाई की सब बातें थोड़े ही दिन चलती हैं। फिर बात आई-गई हो जाती है।'

इतिहास में जयचंद जैसे देशद्रोहियों की कमी नहीं। मुगलकाल से अब तक सैकड़ों जयचंद होते रहे, जिनके कारण देश गुलाम ही बना रहा। उन्हीं दुष्ट जयचंदों में से एक जयचंद वह तिवारी था। अभी सुबह के पाँच ही बजे थे कि वह सेठ के घर की ओर चल पड़ा।

तिवारी के पुकारने पर सेठ की नींद खुली। जब उसने बाहर आकर तिवारी को देखा तो उसके होश उड़ गए। यह मालूम होने पर कि तिवारी अकेला आया है, सेठ को कुछ संतोष हुआ। सेठ की हालत देख तिवारी बहुत कुछ भाँप गया। वह समझ गया कि दाल में जरूर कुछ काला था।

उसने सेठ से एकांत में चलकर कुछ आवश्यक बातें करने के लिए कहा। वहाँ से चलकर दोनों एक कमरे में बैठ गए। तिवारी बोला, "आजाद को आपकी सारी बातों का पता चल चुका है।"

सेठ के पैरों तले से मानो जमीन खिसक गई।

"क...क...कौन सी बातें?" सेठ ने हकलाते हुए पूछा।

"यही कि आपने उनके बारे में पुलिस को सूचना दी है।"

"म...म...म...मैंने कोई सूचना नहीं दी।" सेठ बुरी तरह घबरा गया। उसके मन में छिपा चोर काँप उठा।

“नहीं, आप झूठ बोलते हैं। आपने पुलिस को गुप्त सूचना दी है और आजाद को इसका पता चल चुका है।”

तिवारी वैसे ही अटकलें लगा रहा था; परंतु वास्तव में बात ठीक ही थी। सेठ मक्कारी कर रहा था। उसने पुलिस को कह दिया था कि आजाद आज दोपहर को दल के किसी काम से वहाँ पहुँच रहा है। इसलिए तिवारी की बात सुनकर वह सफेद पड़ गया। उसके सामने हाथ में पिस्तौल लिये हुए आजाद का चित्र घूम रहा था। तिवारी ने समझ लिया, उसका हवा में छोड़ा गया तीर निशाने पर जा बैठा है। अब काम होने में कोई संदेह नहीं है।

तिवारी ने स्वर को थोड़ा नरम बनाते हुए कहा, “सेठजी, आप आजाद का स्वभाव तो जानते ही हैं। वह धोखा देनेवाले को कभी क्षमा नहीं करते। मैंने उन्हें मना लिया है। मैं बड़ी मुश्किल से उन्हें एक बात पर राजी कर पाया हूँ।”

“कैसी बात?”

“आपको ज्ञात होगा कि आजाद फिर से दल संगठित करना चाहते हैं; लेकिन विडंबना यह है कि उनके पास पैसे नहीं हैं।”

“हाँ, आप सही कह रहे हैं।”

“इस समय आप हमारी सहायता कर सकते हैं। आपके पास दल के 8 हजार रुपए जमा हैं। इस समय आप हमें केवल 4 हजार रुपए ही दे दीजिए। मैं आजाद को 11 बजे की गाड़ी से बाहर भेज दूँगा। इस तरह आपकी परेशानी भी हल हो जाएगी।”

“लेकिन इस समय तो मेरे पास रुपए नहीं हैं।”

“मैं कुछ नहीं जानता। आजाद को मैंने बड़ी मुश्किल से राजी किया है। नहीं तो वह आपको पुलिस को सूचना देने का मजा चखाने यहाँ पर आ रहे थे। ऐसी स्थिति में यदि आपने उनका पैसा नहीं लौटाया तो आपको उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।”

आजाद के आने की बात सुनकर सेठ घबरा गया। वह सोच रहा था कि तिवारी को दे-दिलाकर वहाँ से टाल देने में ही भलाई है। घबराहट में भी सेठ अपनी चालाकी से बाज नहीं आया। काफी तर्क-वितर्क के बाद वह ढाई हजार रुपए देने को तैयार हुआ। केवल ढाई हजार रुपए देने के बावजूद उसने रसीद पूरे 8 हजार रुपए की लिख दी।

वह मन-ही-मन सोच रहा था, ‘अगर आजाद कभी रुपया माँगने आएगा तो वह कह देगा कि मैं तिवारी को पूरा रुपया लौटा चुका हूँ।’

ढाई हजार में बला टल जाने से सेठ खुश था। सेठ समझ रहा था कि उसने तिवारी को ठग लिया है। दूसरी ओर तिवारी को खुशी थी कि जो भी हाथ लगा, वही ठीक है। वह सोच रहा था कि उसने सेठ को खूब मूर्ख बनाया है।

❑

27

कपटपूर्ण आयोजन

आकाश में उषा की सतरंगी किरणों से लालिमा छा गई थी। अपने कोटरों में बैठे पक्षी चीं-चीं का राग अलाप रहे थे। धीरे-धीरे सुबह हुई। प्रभात की सुनहरी किरणें गंगा-यमुना के संगम पर बिखर गईं। सूर्योदय होते ही प्रकृति का कण-कण मानो स्वर्ण-किरणों से नहा उठा।

हमेशा की तरह आज भी चंद्रशेखर स्नान और पूजा-पाठ से निवृत्त होकर यमुना किनारे टहल रहे थे। जाड़ों के दिन थे। सुबह की तीखी और बदन में चुभनेवाली ठंडी हवा चल रही थी, फिर भी वे बाल ब्रह्मचारी नंगे बदन थे। मानो ब्रह्मचर्य के तेज से उनकी गठीली मांसपेशियों पर सर्दी, गरमी और बरसात-किसी ऋतु का कोई प्रभाव न होता हो।

टहलते-टहलते आजाद के मन में कई तरह के विचार उमड़ रहे थे। उनका मन कुछ अशांत था। प्रत्येक वस्तु उन्हें उदास और पराई लग रही थी। वह सोचने लगे, 'पं. रामप्रसाद बिस्मिल, भगतसिंह, राजगुरु आदि साथियों के पकड़े जाने के बाद अब कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। अब मैं अकेला रह गया हूँ। मन कहीं नहीं लग रहा। किंतु विवेक कहता है कि अब मातृभूमि की सेवा का भार मेरे ही ऊपर है।

'मुझे दल को एक नए सिरे से संगठित करना पड़ेगा। इसमें संदेह नहीं कि अब मुझे भगतसिंह जैसे वीर साथी कभी नहीं मिल सकेंगे, फिर भी भारत में वीरों की कमी नहीं है। केवल उनकी सुप्त भावनाओं को जाग्रत् कर मार्गदर्शन करने की आवश्यकता है; परंतु दल को नए सिरे से संगठित करने के लिए मुझे पर्याप्त धन की आवश्यकता होगी। मुझे स्वयं पर भरोसा है। मैं अकेले ही इस काम को पूरा कर लूँगा।

'पिछले अनुभवों के आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि अभी हमारे देश में सशस्त्र क्रांति का उचित समय नहीं आया है। विद्रोह और जन-क्रांति होनी चाहिए। बिना सैनिक विद्रोह के जनता के मुट्ठ्‍ भर लोगों को सशस्त्र क्रांति में सफलता हासिल नहीं हो सकती। फिर भी, सबसे पहले जन-जन में जागृति पैदा करना आवश्यक है।

'निस्देंह समय और परिस्थिति के अनुसार गांधीजी का मार्ग ही सरल और उचित है; लेकिन यह मेरे किसी काम का नहीं। मैं उसे अपनाना भी चाहूँ तो अपना नहीं सकता। जब तक सरकार और क्रांतिकारियों के बीच ऐसा कोई समझौता नहीं हो जाता कि सरकार हमारे पिछले कार्यों के लिए हमें कोई दंड नहीं देगी, तब तक हम अपने मार्ग को नहीं छोड़ सकते।

'कांग्रेस और उसके नेता हम क्रांतिकारियों के लिए कुछ करना नहीं चाहते। हमें विवश होकर इस मार्ग पर चलना पड़ रहा है।

'इस बार नए दल का संगठन करके हम एक नई नीति अपनाएँगे। हम सरकार से सीधे टक्कर नहीं लेंगे। अपने दल के अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को हम सेना में भरती कराएँगे। हमारे साथी सैनिक के रूप में रहते हुए अन्य सैनिकों को भी विद्रोह के लिए प्रेरित करेंगे, फिर कभी उचित समय देखते हुए एक दिन में ही हम सरकार का तख्ता पलट देंगे।

‘इस समय यह कार्य दक्षिण भारत से शुरू करना उचित रहेगा। धीरे-धीरे हमारा दल देश के प्रत्येक छोर तक फैल जाएगा।

‘मुझे यहाँ से चल देना चाहिए। सेठ भी सब नहीं तो कुछ रुपया तो लौटा ही देगा। फिर मैं आज रात की गाड़ी से बंबई चला जाऊँगा।’

अचानक आजाद का चिंतन-क्रम टूट गया। कलाई घड़ी पर दृष्टि डालते हुए वे बुदबुदाए, ‘ओह, आठ बजकर दस मिनट हो गए हैं, अब तो तिवारी भी आने वाला होगा। उसने यहीं मिलने का वादा किया था।

‘तिवारी मेरे किसी मतलब का आदमी नहीं है। फिर भी अकेलेपन को दूर करने के लिए उसे साथ ले लिया है। कुछ नहीं तो दो-चार बात करके ही कुछ देर मन बहल जाता है। आज सेठ से रुपए मिल जाएँ तो उसका भी साथ छूट जाएगा। अब तो नए-नए और सच्चे देश-सेवक ही साथी बनाए जाएँगे। अगर मेरे साथ दो-चार साथी भी और होते तो भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव फाँसी पर लटकने के लिए जेल में बंद न रहते; किंतु अपनी विवशता के सामने कलेजा मसोसकर रह जाता हूँ।’

तभी यमुना में एक नाव सरस्वती घाट से उसी ओर आती दिखाई पड़ी। नाव में मल्लाह के अतिरिक्त एक और आदमी बैठा था। नाव समीप आई तो आजाद ने तिवारी को पहचान लिया। आजाद भी नाव की ओर बढ़ चले। नाव से उतरते हुए तिवारी हाथ जोड़कर बोला, “पंडितजी, प्रणाम! माफ करें, आने में थोड़ी देर हो गई; लेकिन मैंने आपके जाने की सारी व्यवस्था कर दी है।”

“वह क्या?”

“मैं अभी सेठ के पास से होकर आया हूँ। उसकी नीयत खराब हो गई थी।”

“तुम्हें कैसे पता चला?”

“संयोग से कल शाम वह मुझे चौक में मिल गया था। मैंने जब उसे उसके वादे की याद दिलाई तो वह बहकी-बहकी बातें करने लगा। कभी कहता, अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं तो कभी पूछता, आजाद इतने पैसों का क्या करेंगे।”

“फिर क्या हुआ?”

“मैंने डराया-धमकाया तो वह चार हजार रुपए देने को तैयार हो गया है। जैसे भी हो, आपको अब उन्हीं से काम चलाना होगा। बाद में धीरे-धीरे बाकी रुपया भी वसूल कर लिया जाएगा।”

“मुझे अब ले-देकर केवल तुम्हारा ही भरोसा रह गया है। संसार के सभी काम मित्रों के सहयोग से ही पूरे होते हैं। तुम्हारे सिवा मेरा अब कोई भी तो नहीं है।”

तिवारी की अंतरात्मा उसे एक बार फिर धिक्कारने लगी, ‘अरे दुष्ट! इस भोले वीर तपस्वी के प्रति ही तू विश्वासघात करना चाहता है? तू कहता है कि सबकुछ ठीक कर आया है। क्या तू सचमुच सब ठीक कर आया है? जंगल के आजाद शेर को फँसाने के लिए जाल बिछाकर भी तुझे उसी शेर से यह कहते लज्जा नहीं आती कि तू सब ठीक कर आया है!

‘अरे नीच! अब भी समय है, सँभल जा। कायर शिकारी शेर को मारने का झूठा श्रेय लेने के लिए घात लगाए बैठा है। अरे दुष्ट! शेर को जाल में न फँसा!’

तभी लालच अंतरात्मा की आवाज को दबाता हुआ बोला, ‘अरे मूर्ख! तू फिर बहकने लगा। उधर वे लोग तेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं। कुछ घंटों की तो बात है, तब तक तू इस हृदय को कठोर बनाए रख। फिर सब ठीक हो जाएगा।’

तिवारी नरम स्वर में बोला, “मैं तो आपका गुलाम हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपके किसी काम आ सकूँ।

मेरे लिए इससे बढ़कर खुशी की बात और क्या हो सकता है! मैं तो आपकी सेवा में ही मातृभूमि की सेवा समझताहूँ।"

"तिवारी, यह तो तुम्हारी उदारता है। आज जब मैं बिलकुल अकेला पड़ गया हूँ, तुम मेरा साथ दे रहे हो। आज आजाद वह आजाद नहीं रहा, जो कुछ दिनों में ही ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलट देने का इरादा रखता था। आज तो वह बिना सेना का सेनापति है।"

"आप निराश न होइए। यदि सेनापति योग्य हो तो सेना इकट्ठा होते देर नहीं लगती। ऐसे सेनापति के पास सैनिक स्वयं आते हैं। उसकी सेवा में रहते हुए वे अपना और देश का गौरव महसूस करते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आनेवाले समय में एक बार फिर से आजाद की तूती बोलेगी और ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलट जाएगा।"

तिवारी की बातों से आजाद का साहस तो बढ़ा ही, साथ ही उसके प्रति विश्वास और भी दृढ़ हो गया। सच तो यह है कि कोई कितना भी कहे कि वह चाटुकारी पसंद नहीं करता, परंतु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सभी इनके जाल में फँसते देखे गए हैं। संसार में यदि चाटुकारी न होती तो लोग बड़े-बड़े अनर्थों से बचे रहते।

"अच्छा, तो सेठ हमें कहाँ मिलेगा?"

"सेठ ने मुझसे दरभंगा हाउस के अफ्रेड पार्क के पास साढ़े दस बजे मिलने को कहा है। वहीं रुपया लेकर आएगा। फिलहाल अब हम यहाँ से चलते हैं। वहाँ अफ्रेड पार्क में आपको छिपने की जगह भी मिल जाएगी।"

"क्या वह रुपए देने अकेला आएगा?"

"हाँ! उसने अकेले आने का वचन दिया है। साथ ही कहा है कि रुपया मुझे ही देगा और मुझसे ही आपकी रसीद ले लेगा। ऐसे में यदि उसने कोई चालबाजी दिखाई तो जैसा मौका होगा वैसा ही देखा जाएगा।"

"ठीक है, चलते हैं।"

दोनों नाव में सवार हुए और सरस्वती घाट की ओर चल दिए। एक के मन में दूसरे के प्रति विश्वास था, वह निर्भीक था। दूसरा, जो विश्वासघात करने जा रहा था, भय से आतंकित था। वह डर रहा था कि कहीं आजाद उसके भावों को ताड़ न जाएँ। यदि उन्हें जरा भी संदेह हो गया तो उनके गिरफ्तार होने से पहले उसे दुनिया छोड़नी पड़ सकती है।

❑

28

बलिवेदी पर

27 जनवरी, 1931 का दिन था। सुबह लगभग साढ़े नौ बजे आजाद और तिवारी इलाहाबाद में केनिंग रोड से होते हुए पार्क रोड और केनिंग रोड के तिराहे के पास से अल्फ्रेड पार्क में घुसे। वहाँ के म्योर सेंट्रल कॉलेज के सामने कौरनिल रोड से कुछ हटकर, इंडियन प्रेस से लगभग सौ गज की दूरी पर, एक पेड़ के नीचे बैठकर बातें करने लगे।

"न जाने क्यों, आज मेरा मन कुछ अशांत हो रहा है, तिवारी। सबकुछ सूना-सूना-सा लग रहा है। यहाँ के चप्पे-चप्पे के प्रति मेरे हृदय में कुछ मोह-सा जाग रहा है। ऐसा तो मेरे साथ कभी नहीं हुआ था।" आजाद ने गंभीर स्वर में कहा।

"भाई, आज आप यहाँ से दूर जा रहे हैं न, इसलिए आपको ऐसा लग रहा है।"

"मैं अपने देश के दूसरे कोने में ही तो जा रहा हूँ, कहीं विदेश तो नहीं जा रहा।"

"आपकी बात तो ठीक है। दक्षिण इसी भारत का तो अंग है। फिर भी, यहाँ की भूमि से आपका विशेष लगाव रहा है।"

"मैं इससे पहले भी कई बार बाहर जाता रहा हूँ। ऐसा आभास मुझे उस समय तो कभी नहीं हुआ!"

"समय-समय की बात है, भाई। कभी होता है, कभी नहीं भी होता। अब आपके वे साथी भी न रहे। ऐसी स्थिति में मन में इस तरह के विचार आना स्वाभाविक है।"

आजाद को तिवारी की बात ठीक जँची। वे मन-ही-मन सोचने लगे, 'वास्तव में तिवारी मेरा बड़ा शुभचिंतक है। वह मेरी मनोदशा का अनुमान ठीक-ठीक लगा रहा है।'

कुछ समय बाद आजाद ने अपनी घड़ी में समय देखा। फिर कहा, "दस बजने में केवल दस ही मिनट रह गए हैं। सेठ आने ही वाला होगा।"

"हाँ, अब मुझे दरभंगा हाउस की ओर जाना चाहिए। वह साढ़े दस बजे तक वहाँ अवश्य पहुँच जाएगा।"

अचानक आजाद ने कौरनिल रोड की तरफ दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने देखा, वहाँ अनगिनत पुलिसकर्मी खड़े थे।

वास्तव में पिछले दिन से ही सी.आई.डी. का एक इंस्पेक्टर तिवारी के पीछे लगा हुआ था। जिस समय तिवारी आजाद को लेकर अफ्रेड पार्क में घुसा, उसने कोतवाली को सूचना दे दी। वहाँ सारे नगर की पुलिस पहले से ही जमा थी। कुछ ही मिनटों में उसने पार्क को घेर लिया। घेरा छोटा करते-करते पुलिस आजाद के चारों ओर पहुँच गई।

पुलिस को देखकर आजाद ने कहा, "पुलिस! यहाँ पुलिस कैसे आई?"

"पता नहीं, पुलिस को कैसे पता चला! चलो, यहाँ से निकल भागें।" तिवारी ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

भागने का अब कोई रास्ता बाकी नहीं था। आजाद ने जिधर देखा उधर पुलिस-ही-पुलिस थी। पुलिस ने सीधे ही गोलियों की बौछार शुरू कर दी। वह हाथ आए अवसर को कैसे छोड़ सकती थी! पुलिस को डर था कि शेर को

जाल में ठीक से नहीं फँसाया गया तो वह दस-बीस का खून कर देगा। पुलिस की छोटी सी चूक में आजाद की निशानेबाजी अपना करिश्मा दिखा सकती थी। फिर पुलिस को अब कोई चिंता नहीं थी, उनका मुखबिर तिवारी भी भले ही मर जाए। अब वह उनके किसी काम का नहीं था।

तिवारी जल्दी ही समझ गया कि पुलिस को उसके ज़िंदा रहने या मर जाने की कोई फिक्र नहीं है। वह अपने कुकृत्य पर अब पछताने लगा। लेकिन अब पछताने से क्या लाभ? उसे तो अब भी पुलिस की गोली से अधिक आजाद की गोली का डर था। वह सोच रहा था, कहीं आजाद को इस समय तनिक भी संदेह हो गया तो उसकी जान विधाता भी नहीं बचा सकेगा।

अपनी जान बचाने के लिए अब वह नाटक करने लगा, "भाई, मुझे तो यह सब सेठ की चाल लगती है। चलो, किसी तरह यहाँ से भागने का प्रयास करें।"

वीर हमेशा निर्मल हृदयी होते हैं। वे दूसरों को भी अपने ही जैसा समझते हैं। प्रकृति का यही नियम यहाँ भी लागू हुआ। आजाद को अभी भी उस दुष्ट पर जरा भी संदेह नहीं हुआ। वे बोले, "तिवारी, तुम भाग जाओ। फिर मैं इनसे अकेले ही निबट लूँगा।"

तिवारी तो डर रहा था कि कहीं आजाद को संदेह न हो जाए। उसने अंतिम बार अपनी सुरक्षा के लिए एक और शतरंजी चाल चली और बोला, "नहीं, मैं आपको ऐसी स्थिति में अकेले छोड़कर नहीं जा सकता।"

आजाद ने कहा, "तुम क्यों समय नष्ट कर रहे हो, जल्दी से यहाँ से निकल जाओ। जब तक तुम यहाँ से सुरक्षित बाहर नहीं निकल जाते, मुझे चैन नहीं मिलेगा।"

आजाद ने तिवारी को अपनी आग उगलती पिस्तौल की आड़ में कर लिया और दूसरे हाथ से धक्का देकर भगा दिया। तिवारी विवश होकर वहाँ से जाने का अभिनय करता हुआ नौ-दो-ग्यारह हो गया। अब पुलिस और आजाद के बीच भीषण गोलियाँ चलने लगीं।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट नॉट बावर चिल्लाया, "कौन हो तुम? यहाँ क्या कर रह हो?"

जवाब में आजाद की गोली उसके हाथ पर आकर लगी। अपने अफसर को घायल होता देख पुलिस धड़ाधड़ गोलियाँ बरसाने लगी। आजाद एक पेड़ की आड़ में आ गए और गोलियों का जवाब गोलियों से देने लगे।

वह अकेला वीर कई हजार पुलिसवालों का सामना भला कब तक कर पाता! आजाद की गोलियों से सी.आई.डी. डिप्टी सुपरिंटेंडेंट ठाकुर विश्वेश्वर सिंह और कई सिपाही बुरी तरह घायल हो चुके थे। लगभग 20 मिनट तक दोनों ओर से बराबर गोलियाँ चलती रहीं। आखिर आजाद कब तक पुलिस की गोलियों का जवाब दे पाते। जल्दी ही उनकी गोलियाँ समाप्त होने को आ गईं। वे समझ गए कि अब बच निकलना मुश्किल है। अत: उन्होंने आव देखा न ताव, फौरन अपनी पिस्तौल को कनपटी पर रखकर घोड़ा दबा दिया।

और 'भारत माता की जय' करते हुए वह जाँबाज शहीद हो गया। उस पल मानो वक्त ठहर गया। पंछियों का एक झुंड कलरव करते हुए तेजी से पार्क के ऊपर से गुजरा। उनका कलरव उस पल मानो क्रंदन में बदल गया।

आजाद का शरीर निस्तब्ध एक ओर को लुढ़क गया। इस प्रकार, आजाद सदैव आजाद रहे और मरते समय भी उन्होंने अपनी आजादी का परिचय दिया। आजादी की प्रतिमूर्ति वह क्रांतिवीर अपनी ही गोली से वीरगति को प्राप्त हुआ।

आजाद हमेशा से आजाद थे, आजाद रहे और आजाद ही चले गए। वे अकसर कहते थे कि ब्रिटिश सरकार कभी आजाद को छू तक नहीं पाएगी और वही हुआ। आखिर में ब्रिटिश सरकार के उन चापलूसों ने जिसे छुआ वे आजाद नहीं, उनका पार्थिव शरीर था।

कायर पुलिसवाले अभी भी इतने आतंकित थे कि उनके पार्थिव शरीर के पास जाने का साहस न कर सके। वे पार्थिव शरीर पर गोलियों की लगातार बौछार करते रहे। काफी गोलियाँ चला देने के बाद ही उन्हें विश्वास हुआ कि पेड़ के पास आजाद नहीं, केवल उनका पार्थिव शरीर पड़ा है। फिर भी वे कुछ देर तक खड़े देखते रहे, फिर वहाँ जाकर बड़ी निर्लज्जता से शव को घसीटते हुए पुलिस की गाड़ी तक ले गए और उठाकर गाड़ी में डाल दिया।

इस प्रकार सशस्त्र क्रांति का वह दीपक 27 फरवरी, 1931 को दिन के दस बजकर बीस मिनट पर अपनी अंतिम तेजमयी आभा दिखाकर बुझ गया।

❑

29

शहीदों की चिताओं पर

भारत माता का वह सपूत, जिसकी आवाज सुनकर बड़े-बड़े सूरमाओं का कलेजा दहल उठता था, अपने ही एक गद्दार देशवासी के विश्वासघात के कारण मारा जा चुका था; परंतु उसकी शहादत के बाद भी सरकार उसके व्यक्तित्व के आतंक से मुक्त नहीं हुई। वह अब भी दहशत में थी।

जनता ने अनुरोध किया कि उनके प्रिय नेता का शव उनको सौंप दिया जाए; परंतु सरकार के पास इतनी हिम्मत कहाँ थी। वह तो इस दहशत से मरी जा रही थी कि आजाद की इस प्रकार मृत्यु से कहीं भयंकर जन-विद्रोह न फैल जाए और उसके लिए एक नई मुसीबत न खड़ी हो जाए।

सरकार ने उनके शव को आनन-फानन में पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया और उसके बाद गुपचुप तरीके से एकांत में जला दिया। शव को जलाने के बाद यह घोषणा नगर में प्रसारित करवा दी गई---

"आज प्रसिद्ध क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद पुलिस मुठभेड़ में मार दिए गए। उनका अंतिम संस्कार पुलिस द्वारा ही किया गया तथा उनकी शव-भस्म को त्रिवेणी में प्रवाहित कर दिया गया।"

समाचार सारे इलाहाबाद में आग की तरह फैल गया। लोगों के झुंड-के-झुंड अल्फ्रेड पार्क की ओर चल पड़े। लाखों स्त्री-पुरुष-बच्चे अपनी आँखों में आँसुओं के दीपक जलाए उस रक्तरंजित स्थान पर जमा हो गए।

लोग रो रहे थे, सिसक रहे थे तथा वहाँ की माटी को अपने माथे पर तिलक की तरह लगा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो स्वयं त्रिवेणी ही उस स्थान पर आ गई हो। लोगों के आँसुओं से वह भूमि सिक्त हो गई।

त्रिवेणी के उस तट पर, जहाँ अंग्रेजों ने उस वीर की शव-भस्म को बहाया था, तिल रखने तक की भी जगह नहीं बची थी। लोग आ-आकर अपने उस महान् वीर नेता को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। इधर गंगा और यमुना का संगम हो रहा था और उधर लोगों के आँसू उस पतित-पावनी धारा को और भी पवित्र कर रहे थे।

वह वृक्ष, जिसकी आड़ में आजाद ने अपना अंतिम महासंग्राम किया था, अब जनता के लिए किसी तीर्थ से कम नहीं था। हजारों लोग रोज वहाँ आते और उस महावीर की याद में आँसू बहाकर उसे याद करते।

वह वृक्ष तीर्थराज प्रयाग का एक प्रमुख तीर्थ बन चुका था। जो भी प्रयाग आता, वह अपने धर्म के अनुसार उस पवित्र स्थान की पूजा करता। अंग्रेज सरकार को यह भी सहन नहीं हुआ और उसने उस पवित्र वृक्ष को कटवा दिया।

सरकार को तो जो करना था, उसने कर लिया; परंतु वह जनता के हृदय से आजाद की स्मृति कभी नहीं मिटा सकी।

चंद्रशेखर आजाद की शहादत के बाद 23 मार्च, 1931 को शाम आठ बजे अपने द्वारा ही बनाए गए नियमों को ताक पर रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर जेल में फाँसी पर चढ़ा दिया। यद्यपि फाँसी की तिथि 24 मार्च नियत थी, परंतु अंग्रेज सरकार इतनी भयभीत थी कि उसने एक दिन पहले ही उन वीरों को फाँसी पर लटका दिया।

उन तीनों क्रांतिकारियों के शव भी चुपके से जला दिए गए तथा उनकी राख रावी नदी के तट पर बहा दी गई। इस तरह वे महावीर अपने रक्त से आजादी के तिरंगे में लाल रंग भरकर संसार से विदा हो गए। आज हम स्वतंत्र हैं, परंतु यह स्वतंत्रता उन्हीं क्रांतिकारियों के चरम पुरुषार्थ की देन है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के लगभग दस वर्ष बाद जहाँ पर वह वृक्ष था, आजाद की आदमकद प्रतिमा स्थापित की गई। सरकारें भूल गईं, नेता आजादी के उन दीवानों को भूल गए, परंतु जनता नहीं भूली। जनता के हृदय में उनकी यादें किसी दीये की भाँति जलती रहीं।

आजाद की वीरगति के काफी समय बाद तक उनकी माताजी जीवित रहीं। सन् 1951 के आसपास जनता के बहुत दबाव के बाद सरकार ने उनके लिए 15 रुपए मासिक की पेंशन बाँध दी। परंतु वे उस पेंशन को शायद ही कभी ले सकीं। वे पगली-सी हो गई थीं और 22 मार्च, 1951 को झाँसी में उनका निधन हो गया।

आजादी हर इनसान का जन्मसिद्ध अधिकार है; परंतु इस अधिकार की रक्षा के लिए बहुत कम लोग ही लड़ पाते हैं। वे शूरवीर होते हैं, जो दूसरों की आजादी की रक्षा के लिए अपना खून बहा देते हैं।

वे क्रांतिकारी वीर थे, कूटनीतिज्ञ नहीं। कूटनीति से उनका दूर-दूर तक का नाता नहीं था। उनकी लड़ाई अपने सुख के लिए नहीं थी। वे सत्ता नहीं चाहते थे। उनकी कामना थी सुशासन की स्थापना। उनकी कामना थी एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना, जहाँ एक मानव दूसरे मानव का शोषण न कर सके। उनकी कामना थी एक ऐसे समाज की, जिसमें जाति, धर्म, रंगभेद के नाम पर कोई भी मानवता की हत्या न कर सके।

आजाद भारत माता की गोद में खिले वे फूल थे, जिस पर आज भी माँ भारती को नाज है। वे मरकर भी अमर हो गए। करोड़ों भारतवासियों के दिलों में आज भी उनकी यादें ज़िंदा हैं। आज भी भगवान् भुवन-भास्कर की किरणें अपने आगमन के साथ ही मानवता एवं मानव अधिकारों की रक्षा में अपना सर्वस्व न्योछावर करनेवाले इस महामानव को प्रणाम करती हैं। पं. रामप्रसाद बिस्मिल का यह शेर आजादी के उन्हीं दीवानों को समर्पित था-

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।

वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।